सूफ़ी कवि जायसी का प्रेम-निरूपण

निज़ामुद्दीन अंसारी

पुस्तक संस्थान
१०१/५० ए नेहरु नगर, कानपुर १२

Soofi Kavi Jaysi Ka Prem Niroopan

by

Nijamuddin Ansary

Rs twenty five only

प्रकाशक पुस्तक सस्थान १०९/५०ए नेहरूनगर, कानपुर-२०८

पुस्तक सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण

लेखक निज़ामुद्दीन असारी

मुद्रक आराधना प्रेस ब्रह्मनगर, कानपुर

पुस्तक बध अब्दुल गफूर एण्ड सस कानपुर

सस्करण प्रथम १९७६

मूल्य पचीस रुपये

प्रातस्स्मरणीय गुरुवर डॉ० रामचन्द्र तिवारी

एवं

पूज्य गुरुवर श्री पण्डित वशिष्ठ त्रिपाठी

'पथ लाइ जेहिं दीन्ह गिआनू'

को

प्रणतिपूर्वक

निजामुद्दीन अंसारी

'मानुस पेम भएउ बैकुंठी। नाहिं त काह छार एक मूठी।।'
'जो नहिं सीस पेम-पथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहेक आवा।।'
"धुव तें ऊँच पेम धुव ऊवा। सिर देइ पाव देइ सो छूआ।।"
'पेम पंथ जो पहुँच पारा। बहुरि न मिलै आइ एहि छारा।।
दुख भीतर जो प्रेम मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जा चाखा।।
'जेहि के हिए पेम रंग जामा। का तेहि भूख-नींद बिसरामा।।'
'तीनि लोक चौदह खण्ड, सब पर मोहिं सूझि।
प्रेम छाडि नहिं लोन किछु, जो देखा मन बूझि।।

जायसी

आमुख

सूफी कवि जायसी का प्रेम निरूपण' श्री निज़ामुद्दीन असारी एम० ए० (प्रवक्ता शिवली नेशनल कालेज आज़मगढ) कृत एक महत्वपूण रचना है। लेखक ने छ अध्यायो म क्रमश 'सूफी सिद्धात और प्रेम तत्त्व जायसी की प्रेम पद्धति', जायसी के प्रेम का स्वरूप 'विरह प्रेम की कसौटी', 'प्रेम का प्रभाव और महत्त्व तथा 'मधुर भाव की साधना और जायसी का प्रेमतत्त्व' जसे महत्त्वपूण विषया का विवेचन किया है। इस प्रकार प्रस्तुत कृति मे जायसी द्वारा निरूपित प्रेम' का सागोपाग विश्लेषण किया गया है। कहना न होगा कि सूफी कवियो की कला चेतना प्रेम कद्रित है। उनका सौन्दय बोध प्रेम दीप्त है और उनकी जीवन दष्टि प्रेमोदभासित है। अपनी रचनाओ के माध्यम से इन कवियो न जीवन के उस मम का उद्घाटन किया है जो समस्त भेद प्रभेदा स ऊपर उठाकर मनुष्य को वकुण्ठी बना देता है। सूफी कवियो का प्रम निरूपण काव्यशास्त्रीय मनोवज्ञानिक एव आध्यात्मिक तीनो दृष्टियो से विवेच्य है। श्री असारी ने प्रस्तुत अध्ययन मे यथा सभव इन तीनों दृष्टियो का उपयोग किया है। जायसी हिन्दी सूफी कवियो म अग्रणी हैं। उनकी रचनाओ का जितना ही गहन अनुशीलन किया जायगा उतना ही जीवन एव अध्यात्म के निगूढ़ तत्वो का उदघाटन होगा। मेरी धारणा है कि जायसी को प्रतिमान मानकर ससार के किसी भी प्रेम काव्य का मूल्यांकन हो सकता है। जायसी के प्रेम निरूपण के व्यवस्थित एव गम्भीर अध्ययन का यह विनम्र प्रयास जायसी के पाठको की तुष्टि का कारण बन सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

रामचन्द्र तिवारी

रीडर, हिन्दी विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबन्ध मे मध्ययुगीन हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य परम्परा के अनन्यतम कवि जायसी के प्रेम निरूपण का सागोपाग अध्ययन किया गया है। पूरा प्रबन्ध छ अध्याया म विभक्त है।

प्रथम अध्याय म सूफी सिद्धान्त और प्रेम तत्व का विवेचन किया गया है। यहाँ सूफी शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए इसके सिद्धान्तो के विकास क्रम में प्रेम के महत्व का विश्लेषण किया गया है। सूफी सिद्धान्तो के विकास के पूरे इतिहास को तीन युगो–प्रथम युग प्रारम्भ से लेकर ८७० ई० तक, द्वितीय युग ८७० ई० से लेकर १००० ई० तक तथा तृतीय युग १००० ई० से लेकर १५०० ई० तक म बाँटा गया है। प्रथम युग आचरण प्रधान था। द्वितीय युग म चिन्तन की प्रवृत्ति विकसित हुई। तृतीय युग म विचारो का संकलन हुआ। उसकी व्याख्यायें की गइ और इस मत को पूर्ण जीवन दर्शन बनाने की चेष्टा की गई। अध्ययन म यह विशेष रूप से पाया गया कि ऐतिहासिक विकास के सभी युगो में 'प्रेम' का महत्व समान रूप से मान्य रहा।

द्वितीय अध्याय मे जायसी के प्रेम-पद्धति की तात्विक मीमांसा की गई है। इसके अन्तर्गत जायसी के प्रेमादर्श, प्रेमोदय के आधार, प्रेम मार्ग की बाधायें, प्रेम की पूर्णता और परिपक्वता, आलम्बन का स्वरूप तथा प्रेमी की मन स्थिति का विश्लेषण मुख्यत जायसी के प्रेम निरूपण को आधार बनाकर किया गया है।

जायसी ने प्रेम का ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया है। पद्मावत महाकाव्य म अनेक स्थलो पर उन्होने प्रेम के आदर्श को मूर्त करने की चेष्टा की है। जायसी का प्रेम ही उनकी साधना का सर्वस्व है। उन्होने स्पष्ट कहा है कि प्रेम की कसौटी पर कस जाने पर मानव कचन के सदृश खरा हो जाता है।

प्रेमोदय का आधार निश्चित करना बड़ा कठिन है। प्रेम का आधार सौंदर्य है लेकिन यह भी द्रष्टा की वैयक्तिक रुचि से सम्बद्ध है। सामान्यत आलम्बन के प्रथम परिचय रूप गुण श्रवण चित्र दर्शन और साहचर्य से इस

भाव का उदय होता है। जायसी के प्रेमोदय का आधार रूप गुण श्रवण ही है।

प्रममाग म प्रेमी साधक को अनेक प्रकार की बाधाओ का सामना करना पडता है। आध्यात्मिक प्रेम म प्रेमी (साधक) और प्रिय (साध्य परमतत्व) का एकात्म कठिनाई से होता है। साधक का समार मे पूण विरक्त हाकर एकनिष्ठ भाव से प्रेममाग मे आगे बढना पडता है वत्तियों को परिष्कृत करना पडता है सासारिक कामनाआ पर विजय प्राप्त करना पडता है। तब कहीं उसे प्रिय की झलक मिलती है। जायसी ने समासोक्ति पद्धति पर इन कठिनाइयो के उल्लेख करने के साथ आ यात्मिक प्रम की व्यजना की है।

प्रेम तत्व की पणता और परिपक्वता प्रियतम के प्रति एकनिष्ठ एव अन य भाव के उदय म होती है। प्रेम, अद्व तता की सिद्धि की आर ल जाता है। जायसी के प्रम निरूपण म अद्व त भावापन्नता लक्षित होती है। प्रगाढ एव एकनिष्ठ प्रेम की मनावत्ति इतनी प्रबल हाती है कि वह प्रेमी का सदव एक भाव म बन रहन के लिए बा य करती है जिससे उसका सारा जीवन एकोमुख और एकनिष्ठ हो जाता है। जायसी ने इसी स्तर पर प्रेम की पूणता का प्रतिपादन किया है।

आलम्बन का (नायिका) स्वरूप ही प्रम के स्थायित्व का आधार होता है। जायसी के भी का य का बीज भाव प्रम ही है। रति का प्रवक सौ दय है। इसलिए प्रेम निरूपण करन वाले कवि आलम्बन की सौन्दय चेष्टाओ का वणन उत्साहपूवक करते हैं। जायसा न आलम्बन (नायिका) का शरीरगत और चष्टागत दोना प्रकार का रूप चित्रण किया है। नायक भी आदश प्रेमी है। वह प्रेयसी को पान क लिए योगी बन कर निकल पडता है। वीतरागी क समान माग क सभी कष्टा को शान्त भाव स सहता है। वह प्रतिशोध, लाभ, अहकार, क्रोध ईर्ष्या घणा आदि से परे है इस प्रकार वह प्रेयसी क प्रम क आलम्बन का उचित अधिकारी है।

प्रेमादय स लेकर प्रिय क साथ पूण तादात्म्य की प्राप्ति तक प्रेमा की मन स्थिति का विश्लेषण मनाविज्ञान एव अध्यात्म-दाना के लिए चुनौती है। जायसी ने प्रमी की मन स्थिति का क्रमश उदात्त बनाने की चष्टा की है। वास्तव म भौतिक जगत म भी 'प्रम एक ऐसा तत्व है जो प्रेमी को प्रिय की भावना म निरतर लीन रखता है। प्रिय का निरतर ध्यान करता हुआ प्रेमी उसस मिलन की अभिलाषा सजोय हुए अनक मानसिक स्थितिया को पार करके उस पूण एकात्म भाव स्थापित करता है। अपन अध्ययन क्रम मे मन रहस्यवाद क अध्येताआ क निष्कर्षों स प्ररणा लकर प्रेमी रत्नसेन की मन स्थिति का अध्ययन किया है।

तृतीय अध्याय म जायसी के प्रेम के स्वरूप के सम्ब घ म विचार किया गया है कि वह आध्यात्मिक है अथवा लौकिक ? विभिन विद्वानो के विचारा का विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया है कि जायसी का प्रेम आध्यात्मिक है जिसकी व्यजना हम तीन रूपा म प्राप्त होती है--रूपक द्वारा, कथा प्रसगो म अलौकिकता की ओर सकेत द्वारा तथा सूफी मत क अनुकूल प्रम की "यजना द्वारा । जायसी के प्रम चित्रण को लौकिक मान लन पर भी उसका महत्व कम नही होता । यह अपन लौकिक रूप म भी प्रेम के त्याग एव उत्सग का भाव जगान वाला है । यह उत्कट प्रेम प्रमी को न जीन दता ह न मरन देता है । प्रतिनायक मे भी जायसी न प्रम की "यजना की है जो आचरण क अनौचित्य को देखकर नायक के आचरण की उच्चता का बोध प्रम की दि यता उज्ज्वलता और सात्विकता को ही प्रमाणित करता है ।

चतुथ अध्याय म यह दिखलाया गया है कि विरह प्रेम की कसौटी है । प्रेम की सच्ची साधना विरह ही है । सयोग तो प्रम का उपभोग पक्ष है । इस पक्ष म प्रम का गाम्भीय स्थायित्व अन यता उज्ज्वलता उसके लिए किये गये त्याग और चुकाय गय मूल्य का पता नही चलता । प्रमी की निष्ठा, दढता अग्गिता आत्म समपण सुख वभव का उत्सग, प्रम पथ के कष्ट सहन का पता वियोग से ही चलता है । वियोग ही प्रेम का त्याग पक्ष है । साध्य क महत्व मू य और अलभ्यता का पता भी वियोग पीडाआ के अनुपात स चलता है । जायसी का विरह वणन निश्चित रूप से उनके गम्भीर प्रम की कसौटी बन सका है ।

पचम अ याय म प्रम के प्रभाव और महत्व का अध्ययन किया गया है । इस अध्ययन क्रम म जायसी द्वारा प्रतिपादित प्रम के महत्व को कइ सूत्रा क माध्यम स स्पष्ट किया गया है । प्रेम प्रमा को प्रिय के व्यक्तित्व म लय कर दना है । प्रम के समान कोई भी वस्तु सु दर नही हो सकता । प्रम क अतिरिक्त ससार की किसी भी वस्तु म ऐसी सु दरता नहा मिल सकती जा प्रत्यक स्थिति अथवा दशा म एक समान होकर वतमान रह । प्रेम की वाजा किसी भी प्रकार खेली जाय उसम लाभ ही लाभ है । प्रम ही ईश्वर है । सष्टि की रचना प्रम का साधक बनान क लिए की गइ है । इन सूत्रा से जायसी के प्रेम की महत्ता प्रकट होती है ।

षष्ठ अध्याय म मधुर भाव की साधना और जायसी का प्रेम तत्व की विवचना की गइ है । इस मधुरभाव को मनुष्य का आदिवासना का परिणाम कहा जाय तो सष्टि की प्रतीकात्मक अनुभूति का अभि यक्ति पर यह प्राय प्रत्येक उपासना पद्धति म पाया जाता है । साहित्य के सभी धाराओ म अनु

शीलन करने से पता चलता है कि समान भाव, विचार, अनुभूति, स्थिति, पदार्थ आदि के लिए समान प्रतीकों और उपमानों का व्यवहार होता आया है। जायसी के प्रेम निरूपण में मधुर भाव की साधना के तत्त्व लक्षित होते हैं।

प्रस्तुत प्रबंध पूज्य गुरुवर डा० रामचन्द्र तिवारी (वरिष्ठ रीडर, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर) के निर्देशन में लिखा गया है। पूज्य गुरुवर द्वारा पद पद प्राप्त अमूल्य परामर्शों तथा पथ निर्देशन के कारण ही यह कार्य पूर्ण हो सका है। उनके स्नेहपूर्ण सद्भाव तथा विलक्षणता से मुझे सतत नव प्रेरणा प्राप्त होती रही है। यदि उनकी असीम अनुकम्पा न होती तो प्रस्तुत विषय पर कार्य करना सम्भव न होता और नाव मझधार में ही डूब गयी होती। उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन के लिए मेरे शब्दों में सामर्थ्य नहीं है मात्र इतना ही कह सकता हूँ कि प्रबंध में जो कुछ बन पड़ा है, वह उन्हीं की कृपा का प्रसाद है।

विषय की स्वीकृति प्रदान करके डा० गोपी नाथ तिवारी (भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर) ने मुझ पर विशेष कृपा की है। हम हृदय से डा० तिवारी के आभारी हैं। परम श्रद्धेय पूज्य गुरुवर डा० भगवती प्रसाद सिंह (आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर) ने समय समय पर लेखक को अपने स्नेह पूर्ण सदपरामर्शों से प्रोत्साहित किया है। वह उनके स्नेह समन्वित व्यवहार और सदपरामर्शों के प्रति कृतज्ञ है।

प्रातस्मरणीय पितृ तुल्य पूज्य गुरुवर श्री पण्डित बशिष्ठ त्रिपाठी जी (व्याख्याता, हिन्दी संस्कृत विभाग ज० इ० का० सोहसा मठिया देवरिया) से जो सत्प्रेरणा एवं अहेतुकी सहायता मुझे प्राप्त हुई है उसका प्रतिदान मैं जीवन पर्यन्त सम्भवतः न दे सकूँगा। वस्तुतः प्रस्तुत कार्य सम्पादन की चिन्ता मुझसे अधिक उन्हें थी। उनके उपकारों का स्मरण करके मेरा चित्त गद्गद एवं पुलकित हो जाता है। इतना ही नहीं, उन्होंने मेरे साथ वात्सल्यपूर्ण व्यवहार किया है। उनके अधिकार की समस्त साधन सम्पदा मेरे लिए सदैव सुलभ रही है। उनका जितना स्नेह और आशीष मुझे प्राप्त हुआ है, उतना कम लोगों को प्राप्त होता है। इसे प्राप्त कर मैं स्वयं को कृतार्थ समझता हूँ।

कुशल प्रशासक, परम शिक्षाविद् श्री जीवन गुप्तान (प्राचार्य, शिवली नेशनल स्नातकोत्तर महाविद्यालय आजमगढ़) से लेखक को सदैव प्रेम तथा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ है। वह उनके प्रति उरसा आभारी है। मैं हिन्दी विभाग, (गोरखपुर विश्वविद्यालय) के सभी गुरुजनों का आभारी हूँ। सभी की वत्सलता और स्नेह मुझे बराबर मिला है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को सुचारता से प्रकाशित करने में पुस्तक संस्थान के संचालक एवं आदरणीय श्री महेश त्रिपाठी ने जो तत्परता एवं उत्साह प्रदर्शित किया है, तदर्थ उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध हिन्दी विभाग के रीडर पूज्य गुरुवर डा० रामचन्द्र तिवारी के निर्देशन में लिखा गया है। प्रबन्ध को प्रस्तुत रूप देने में डा० तिवारी से हमें बराबर सहायता मिली है। *विषय की स्वीकृति प्रदान करके हिन्दी विभाग* के अध्यक्ष डा० गोपीनाथ तिवारी ने हम पर विशेष कृपा की है। हम हृदय से गुरुवर डा० गोपीनाथ तिवारी के आभारी हैं। यदि उनकी कृपा न होती, तो प्रस्तुत विषय पर कार्य करना संभव न होता।

मैं हिन्दी विभाग के सभी गुरुजनों का विशेष आभारी हूँ। सभी की वत्सलता और स्नेह मुझे बराबर मिला है।

विज्ञ बन्धुओं से सविनय निवेदन है कि वे प्रबन्ध में प्राप्त न्यूनताओं की ओर निर्देश करते हुए आवश्यक संशोधन, परिवर्तन एवं परिवर्धन के परामर्श देकर उपकृत करेंगे।

गणतंत्र दिवस
२६ जनवरी १९७६

निजामुद्दीन अन्सारी
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
शिब्ली नेशनल कालेज
आजमगढ़ (उ० प्र०)

विषय-सूची

१ | सूफी सिद्धान्त और प्रेम-तत्त्व

विषय प्रवेश सूफी शब्द की व्युत्पत्ति

सूफी' शब्द का साधारण अर्थ इस्लामी संत समझा जाता है। फारसी में जिसे तसव्वुफ' कहते हैं वह हिंदी का सूफीमत है। तसव्वुफ' और सूफी' दोनों ही प्रायः एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं और सूफ शब्द से व्युत्पन्न हैं। सूफी शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। विविध तर्कों एवं युक्तियों के द्वारा इस शब्द की विभिन्न व्युत्पत्तियों को संगत एवं समीचीन सिद्ध करने के प्रयत्न किये गये हैं। प्रायः ये व्युत्पत्तियाँ सूफी साधकों के जीवन को लक्ष्य में रखकर दी गयी हैं। अबूनसर अल सर्राज ने अपनी पुस्तक 'किताब अल लुमा' में 'सूफी' शब्द पर विचार करते हुए बतलाया है कि मूलतः सूफी शब्द अरबी के सूफ शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ ऊन है। भाष शास्त्री निकलसन[1] इस व्युत्पत्ति को उचित मानते हैं। इस व्युत्पत्ति से सहमति का कारण स्पष्ट करते हुए अलसर्राज ने कहा है कि ऊनका व्यवहार पैगम्बर संत तथा साधक करते आये हैं। इसका समर्थन विभिन्न दृष्टान्तों और विवरणों से हो जाता है। इस व्युत्पत्ति से ऐसा प्रतीत होता है कि औण वस्त्रधारी, एकांत जीवनयापी साधकों के जीवन को दृष्टि में रखकर नामकरण कर लिया गया हो तो इसमें इषत्मात्र भी असंगति नहीं दीखती। नो एल्दके[2] ने भी इस

---

१ म० जेम्स हेस्टिंग्ज इन्साइक्लोपीडिया आफ रेलिजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम १२, १९२१।

2 James Hastings Encyclopedia of Religion and Ethics, Vol XII 1921, P 10

3 James Hastings Editor Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol XII (1921) P 10

व्युत्पत्ति का समर्थन करते हुए स्पष्ट कर दिया है कि इस्लाम की प्रथम दो शताब्दियों में प्रायः लोग ऊनी वस्त्र का प्रयोग करते थे और संन्यास जीवन यापक इसका विशेषरूप से उपयोग करते थे। ब्राउन ने इसी मत का समर्थन किया है। मासूदी को मूल आधार मानते हुये उसने लिखा है कि 'प्रारम्भिक काल से ही लोगों ने ऊनी वस्त्र धारण करने को जीवन की सहज, सादगी तथा विलासता से दूर रहने का प्रतीक मान लिया था।'[1] हजरत मुहम्मद और उनके बाद के प्रथम चार खलीफा–अबू–बक्र–अल, कलाबाधा[2] इब्न खल्दून तथा लुइमासिओ[1] ने भी सूफी शब्द को सूफ से ही व्युत्पन्न बताया है और इसी व्युत्पत्ति को सर्वोत्तम माना है।

कतिपय विद्वान सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफा शब्द से मानते हैं। सूफा अर्थात पवित्र। हुजवीरी का कथन है कि मूलतः सूफा शब्द से ही सूफी शब्द निसृत है। उनका कहना है जो लोग पवित्र थे वे सूफी कहलाये। इसमें आपत्ति यह है कि 'सूफा' शब्द से 'सफवी' बनेगा सूफी नहीं।

कुछ लोगों का कहना है कि पैगम्बर मुहम्मद साहब के समय में मदीने की मस्जिद के सामने बेंच पर बैठने वाले भक्तों को अहल अल सुफ्फाह कहते थे। इस 'सुफ्फाह' शब्द से ही सूफी शब्द बना है। इस व्युत्पत्ति में भी दोष है। सुफ्फाह शब्द से *सुफ्फी बन सकता है, सूफी नहीं।*

कुछ विद्वानों के अनुसार सफ्फ अव्वल के सफ्फ शब्द से सूफा शब्द की संगति बैठती है। सफ्फ अव्वल अर्थात प्रार्थना में निरत इमान लाने वालों की प्रथम पंक्ति। लेकिन सफ्फ से सफ्फी शब्द बनेगा, सूफी नहीं। *जियामुल लुगात में सूफाह शब्द से इसका बनना माना गया है। कहा जाता* है कि जाहिलिया काल में अरबों की ऐसी जाति थी जो सांसारिक व्यापारों से अलग होकर मक्का देवालय की सेवा में नियुक्त हो गयी। कुछ लोग बनू सूफा नामक एक यायावर जाति के 'सूफा' शब्द से इसका व्युत्पन्न बताते हैं। सूफी *फकीर भी अपने दो चार शागिर्दों के साथ स्थान स्थान पर भ्रमण किया करते* थे। इसी तरह ग्रीक शब्द सोफिस्ता से सूफी और थियो साफिया' शब्द से

---

1 L G Browne Literary History of Persia (1909) P 417

2 A M A Shushtery outlines of Islamic culture Vol XX (1938) P 374

3 Encyclopaedia of Islam, Vol VIII (1934) P 681

4 A M A Shushtery outlines of Islamic Culture Vol 2 P 374

तस तुफ' की उत्पत्ति सिद्ध करने की चेष्टा भी की गयी है। सोफिया का अर्थ है ज्ञान। इस विषय में कहा जा सकता है कि सूफी साधक अनुभव सिद्ध ज्ञान महत्त्वपूर्ण मानते थे। अल बरूनी (जन्म काल ९३७ ई०) के समय में भी यह मान्यता थी कि 'सूफ (ऊन) शब्द से 'सूफी' शब्द बना। पर उसने यह मत प्रकट किया है कि उच्चारण में विकृति के कारण 'सूफी शब्द की व्युत्पत्ति सूफ से की जाने लगी।[1] उनका कथन है कि इसका अर्थ वह व्यक्ति है जो 'साफी' (पवित्र) है। उसके अनुसार यह साफी ही 'सूफी हो गया है। सूफी अर्थात विचारकों का दल।[2] ब्राउन का कहना है कि 'यह निश्चित है कि सूफी शब्द की व्युत्पत्ति 'सूफ से हुई है। फारसी रहस्यवादी साधकों को पश्मीना पोश (ऊन धारण करने वाला) कहा गया है इससे भी इस बात की पुष्टि होती है।"[3]

वस्तुत 'सूफी शब्द 'सूफ (ऊन) से ही व्युत्पन्न है। व्याकरण की दृष्टि से भी 'सूफी शब्द की सूफ' शब्द से व्युत्पत्ति शुद्ध है।

आरबेरी, निकल्सन ब्राउन, मारगालिथ मीर वली उद्दीन प्रभृति विद्वानों ने यह सिद्ध कर दिया है कि वास्तव में सूफी शब्द सूफ से ही व्युत्पन्न है।[4]

सूफीमत की साधना का केन्द्र बिन्दु प्रेम है। अबुल्हसन अल्हुज्वेरी का कथन है कि वह शख्स जो मुहब्बत के वास्ता से मुसफा होता है वह साफी और जो शख्स दोस्त की मुहब्बत में गर्क हो गैर दोस्त से बरी हो वह सूफी होता है।[5]

यदि हम उपर्युक्त सभी बातों को मिलाकर एक साथ देखें तो सूफी शब्द का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है। सूफी इस्लाम के वह मर्मी साधक हैं जो ऊनी चोगे का व्यवहार करता है और परम प्रियतम के रूप में परमात्मा की उपासना करता है तथा इसे अपने जीवन का परम लक्ष्य मानता है।

अधिकांश मत सूफ से सूफी की व्युत्पत्ति मानते हैं जो कई कारणों से समीचीन ज्ञात होता है। उनके वस्त्र एक विशेष प्रकार से मोटे ऊन के बने

---

१ अलबरूनीज इण्डिया अनु० सचाऊ पृ० ३३

२ वही।

3 E G Browne, A Literary History of Persia, Vol, P 417

4 E G Browne, Encyclopaedia of Religion and Ethics Vol XII, P 10

५ कश्फुल महजूब हुज्वरी (उर्दू अनुवाद) पृ० ४१।

रहते थे जो लोगो का ध्यान अनायास ही आकृष्ट कर लेते थे । ऊन से बने हुए मोटे वस्त्रा के धारण करने के कारण वे अपनी निस्पहृता, सादगी तथा स्वेच्छया दारिद्रमय जीवनयापन की पद्धति को अभिव्यक्ति देते थे । सासारिक वस्तुओ से उ हे कोई मोह नही था । ईश्वर के अनराग तथा अबाध मिलन की साधना मे काल यापन ही उनका सर्वोच्चादश था । परमेश्वर की उपलब्धि और उनका प्रेम एकमात्र ध्यय था । इस प्रकार धन वभव गह परिवारादि के प्रति उपेक्षा प्रदर्शित करना सूफियो के लिए स्वाभाविक हो गया था । सादगी की यह वेशभूषा उनका केवल बाहरी परिधान न था । यह स यास व्रत सूफियो की आ तरिक मनोवत्तिया को भी प्रभावित करता रहा ।

अत यह स्पष्ट है कि ऊनी वस्त्र स यासियो साधको या परमा मा के प्रेम म मग्न रहने वाले मर्मियो के लिए स्वीकृत हो चुका था ।

सूफी सिद्धा तो के विकास क्रम मे प्रेम का महत्त्व

सूफीमत के उदभव और विकास के सम्ब ध म पाश्चात्य विद्वाना म से ब्राउन[1] निकलसन[2] मारगुलियथ[3] आरवेरी[4] मारगरेट[5] स्मिथ[5] तथा गिब्ब[6] आदि ने विचार किया है । उनके अध्ययन का उपयोग करते हुए हि दी साहित्य म प० च द्रबली पाण्डेय[7], प० परशुराम चतुर्वेदी[8] श्री रामपूजन तिवारी[9] डॉ० भगल कुलश्रेष्ठ[10], श्रीमती सरला शुक्ला[11], श्री विमलकुमार जन[12] एव

1 E G Browne A Literary History of Persia (1909) Vol I II

2 R A Nicholson The Mystics of Islam (1914) studies in Islamic Mysticism (1921), A Literary History of Arab (1930)

3 Muhammdanism

4 Supism

5 Algazali the mystic Rabia the mystic

6 Muhammdanism–A Historical Survey

७ तस वुफ अथवा सूफीमत ।

८ सूफी का य सग्रह ।

९ सूफीमत साधना और साहित्य ।

१० हि दी प्रेमाख्यान काव्य ।

११ जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य ।

१२ सूफीमत और हि दी साहित्य ।

डा० श्याममनोहर पाण्डेय[1] ने इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है।

सूफीमत का इतिहास तब से प्रारम्भ होता है, जब मुहम्मद साहब मक्का से मदीना गये थे।[2] अतः यह कहा जा सकता है कि सूफी मत का इतिहास ६२३ ई० के लगभग प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में सूफीमत में दर्शन का प्रवेश नहीं था। इस्लाम एक प्रवृत्तिमूलक धर्म था।

इस्लाम के रहस्यवादी सूफी नाम से विख्यात है और इस्लाम का रहस्यवाद या सूफियों का दर्शन ही 'तसव्वुफ' है। इस्लाम के साधकों ने इसकी अनेक प्रकार से व्याख्याएँ की है। सूफी संत मारूफ अलकरखी (८१५ ७२ ई०) का कथन है कि परमात्मा सम्बन्धी सत्य का जानना और माननीय विषयों का त्याग ही सूफी का सच्चा धर्म है।[3] अबुल हुसनअल नूरी (९०७ ई विद्यमान) ने सूफी और सूफी धर्म की व्याख्या करते हुए कहा है। सूफी को संसार से घृणा होती है और ईश्वर से प्रेम है।'[4] उसने अन्यत्र कहा है कि 'नफ्स' (वासनामय हृदय) के सभी आनन्दों का परित्याग सूफी का धर्म है। इसी प्रकार जुनेद (सन ९०९ ई०, विद्यमान ने बतलाया है कि तसव्वुफ का तात्पर्य है अपने स्वार्थों का त्याग कर परमात्मा के लिये समर्पित हो जाना। हुज्विरी (१०९२ ई० मृत्यु) का कथन है कि सूफियों के लिये सूफी सिद्धान्त सूर्य से भी अधिक स्पष्ट है। सच्चा सूफी वह है जो अपवित्रता को पीछे छोड़ आया है।[5] फरीदुद्दीन अत्तार (सन १२३० ई० विद्यमान) ने तजकिरा औलिया नामक ग्रन्थ में तसव्वुफ की सत्तर परिभाषाएँ दी हैं।[6] कहा जाता है कि सूफीमत कोई ऐसा सुसगठित सम्प्रदाय नहीं है कि उनके सिद्धान्तों की निश्चित तालिका दी जाय या उनकी मान्यताओं की सुनियोजित रूपरेखा प्रस्तुत की जाय। यानी धर्म अथवा इस्लामी सम्प्रदायों और मतों की भाँति इसकी सैद्धान्तिक मर्यादा का निर्धारण नहीं हुआ है। निकलसन के अनुसार संत मारूफुलकरखी की परिभाषा ही सूफीमत की प्राचीनतम परिभाषा है।[8]

१ मध्ययुगीन प्रेमाख्यान।
2 H A R Gibb Muhammdanism P 100 101
३ लिटररी हिस्ट्री आफ दी अरबूस' (१९३०) पृ० ३०५।
४ वही, पृ० ३८५-३९२।
५ 'ग्रन्थ कश्फुलअल महजूब अल हुज्विरी (अनु०), निकलसन (१९११ ई०) पृ० ३५।
६ जनरल रायल एशियाटिक सोसाइटी (१९०४ ई०), पृ० १३०।
७ लिटररी हिस्ट्री आफ परसिया ई० जी० ब्राउन, (१९०९ ई०) पृ० ४२२
८ लिटररी हिस्ट्री आफ दी आ बूस, (१९३० ई०), पृ० ३०५।

अबू अली कुजविनी के अनुसार सूफीमत सुन्दर व्यवहार है। अबुहम्द गाज्जाली के मत में विधि निषेधों से बचना ही सूफी धर्म है। बिशर अल हाफी ने बतलाया है कि सूफी वह है जो परमात्मा के सहारे अपने हृदय को पवित्र रखता है। अबू सईद खर्राज ने इसकी परिभाषा करते हुए बतलाया है कि एकाग्रचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाना ही सूफीमत है।[1] अबू बक्र शिबली कहते हैं कि यह परमात्मा है अर्थात् इस संसार में अथवा आने वाले जीवन में परमात्मा के अतिरिक्त अन्य किसी ओर ध्यान न जाना ही इसकी विशेषता है। जुन्नून मिस्री ने सूफी के लक्षणों को बतलाते हुए लिखा है कि सूफी वह है जो वचन और कर्म में सामंजस्य बनाये रखता है और उसका मौन उस अवस्था का परिचय देता है और जो सांसारिक बंधनों को दूर कर देता है। कुछ लोगों का कथन है कि सूफियों की विशेषता यह है कि उनका हृदय पवित्र और उनके कार्य भी पवित्र हैं।

इस प्रकार अनेक परिभाषाएँ देखने को मिलती हैं जिनमें नाना प्रकार से सूफियों के गुणों पर प्रकाश डाला गया है। जैसा कि हुज्विरी ने कहा है कि सच्चा सूफी वही है जो अपवित्रता को पीछे छोड़ आया है।[2]

इन समस्त परिभाषाओं में इस बात पर बल दिया गया है कि बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि और पवित्रता बनाये रखना सूफी साधक का कर्तव्य है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी समस्त इच्छाओं समस्त वासनाओं को मिटाकर परमात्मा की इच्छा पर अपने को छोड़ दे। सूफीमत के विख्यात व्याख्याता अल कुरशी ने बाह्य और आभ्यन्तरिक जीवन की पवित्रता को ही सूफी धर्म माना है। उनका कहना है कि पवित्रता एक श्रेष्ठ वस्तु है। चाहे जिस प्रकार की भाषा के द्वारा उसे व्यक्त किया जाय और उसके विपरीत अपवित्रता है जिसका परित्याग करना चाहिए।[3] विधि विधानों से मुख मोड़ निखिल विश्व में व्याप्त इस शाश्वत तथा अमूर्त शक्ति की झलक सर्वत्र पाकर मुस्लिम साधकों ने जो रहस्य अभिव्यक्त किए उन्हीं के सामंजस्य का नाम सूफीमत है।

अतः सूफीमत या तसव्वुफ भी रहस्यवाद ही है अन्तर्निहित भावना के

---

१ R A Nicholson studies in Islamic mysticism (1921) p 49

२ अल हुज्विरी दी कश्फुल महजूब अनु० निकलसन (१९११ ई०),

३ रामपूजन तिवारी सूफी मत साधना और साहित्य पृ० १६८ ६९

दर्शन बनाने की चेष्टा की गई। सूफी मत के सम्बन्ध मे यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक विकास के सभी युगो मे प्रेम का महत्व समान रूप से मान्य रहा।

प्रथम युग–(५००–८७० ई० तक)

प्रथम युग के सूफीमत मे दर्शन का समावेश नही था। इस्लाम एक प्रवृत्तिमूलक धर्म था। पहली बार इसमे कतिपय ऐसे साधक हुए जिनमें भक्ति का सन्निवेश हुआ। आत्मा का शुद्धीकरण प्रारम्भ हुआ। इन साधको मे इब्राहीम बिन अधम फुजायल बिन अयाज राबिया आदि का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रथम युग के सूफियो मे इब्राहीम बिन अधम का नाम अति महत्वपूर्ण है। इसका जन्म बल्ख मे हुआ था। इसकी मृत्यु सन ७८३ ई० मे हुई। इसने भी फकीरी जीवन, एकान्तवास और सांसारिक वस्तुओं के त्याग पर बल दिया है। परमात्मा के ऊपर अपने को सम्पूर्ण रूप से छोड देना ही उसके उपदेशों का सार है। अत्तार ने उसके एक प्रवचन को उद्धृत किया है, जिसमे कहा गया है–'हे खुदा जानते हो कि अपना प्रेम प्रदान कर जिस प्रकार से तुमने मुझे गौरवान्वित किया है, उसकी तुलना में आठों स्वर्ग मसक के एक पंख से अधिक मूल्य नही रखते।'[1]

परमात्मा के प्रति अनन्य भक्ति और संसार के प्रति उसकी विरक्ति कितनी अधिक थी, इसका ज्ञान निम्नलिखित कहानी से होता है। जब इब्राहीम राज्य परित्याग कर फकीरी जीवन व्यतीत करता हुआ इतस्ततः भ्रमण कर रहा था, तो कही उसका एक युवक से साक्षात्कार हो गया। वह युवक उसका पुत्र था। उसको देखकर उसके मन मे मोह उत्पन्न हुआ किन्तु वह सम्भल गया। कहा जाता है कि उसने परमात्मा से प्रार्थना की कि हे खुदावन्द! तुम्हारे प्रेम के लिए मैंने अपने संसार का परित्याग किया और तुम्हारे ध्यान मे रत रहने के लिए मैंने अपने बच्चे को अनाथ बनाया। यदि अब इस प्रेम को प्राप्त करने के लिए तुम्हारी शर्त हो कि मेरे टुकडे टुकडे कर दिये जायें तो भी मैं तुम्हारे अतिरिक्त किसी अन्य की ओर सहायतार्थ नही देखूंगा।[2]

उपर्युक्त उक्तियो से इब्राहीम बिन अधम की पारलौकिक प्रेम की प्रगाढ़ता प्रदर्शित होती है।

फुजायल बिन अयाज (मृ० सं० ८५८) और इब्राहीम बिन अधम दोनों ने अपनी सम्पत्ति तथा राज्य का परित्याग कर बसरा के किसी शिष्य को

१ डा० रामपूजन तिवारी सूफी मत साधना और साहित्य पृ० २१७

मुरीद बनाया था । इन सभी सन्तो मे 'खौफ' की भावना भी प्रेरक तत्व के रूप में विद्यमान थी किन्तु राबिया बसराबिया ने सूफीमत मे प्रेम भावना की स्थापना की । उसने अपना सवस्व ईश्वर चिंतन मे अर्पित कर दिया । राबिया म आत्म समपण तथा पूण विश्वास की भावना प्रधान थी । राबिया का पूरा नाम राबिया अल अदाविया अलबसरी था । उसका जन्म स्थान बसरा था । इसलिए उसे राबिया अल बसरिया भी कहते हैं । उसका जन्म सन् ७१७ ई० के लगभग बसरा मे हुआ था । अत्तार ने राबिया का परिचय अति आशसात्मक शब्दो मे दिया है । 'उसके हृदय म परमात्मा का प्रेम तथा उसका विरह व्याप्त था । उसकी एकमात्र ईहा ईश्वर प्रेम मे लीन हो जाने की थी, वह निष्कपट नारी दूसरी मरी के समान थी ।'[1] राबिया को परम प्रेम ही श्रेय था । वह कहती है–'हे नाथ ! तारे चमक रहे हैं, लोग निद्रा निमग्न हैं सम्राटो के द्वार बद है, प्रत्यक प्रेमी अपनी प्रेयसी के साथ और मैं यहाँ एकाकी आपके साथ हू । वह केवल परमात्मा की कृपा और पर ही विश्वास करती थी । उसका कहना था– हे ईश्वर मैं आपको द्विविध प्रेम करती हू एक तो स्वाथ पूण कि मैं आपके अतिरिक्त किसी अन्य का ध्यान नहीं करती, दूसरा शुद्ध प्रेम है कि अब आप मेरे मन का आवरण हटा दें तो मैं आपका साक्षात्कार कर पाती । दोनो ही रूपो म श्रेय आपका है । वह आपकी ही कृपा का प्रसाद है ।'[2]

---

1 She the secluded one was clothed with the clothing of pur ity and was on fire with love and loving and was enamou red of the desire to approach the lord and be consumed in his glory She was a Mary and a spotless woman "

Margaret Smith Rabia the mystic P 54

2 'Two ways I love thee Selfishly
And next and worthy is of thee
Tis selfish love that I do naught
Save Think on thee wim every thought
Tis purest love when man dost ra-ise
The eveil to my adorin, gaze
Not mine the praise in that or this,
Thine is the praise in both Iwis'

A Literary History of Arabs P 234

भय की भावना का सवथा अभाव प्रेममयी राबिया मे भी नही था । उसे रसूल मुहम्मद का डर था क्योकि सम्भवत प्रेम की उपासिका राबिया परमात्म चिंतन मे मुहम्मद के महत्व का ध्यान नही रख पाती थी उसे मध्यस्थ की आवश्यकता ही न थी । उसने प्राथना की–' हे खुदा के रसूल ! तुम्हें कौन नहा प्यार करता किन्तु परमेश्वर के प्रेम से मेरा हृदय इतना अधिक ओत प्रोत है कि किसी अ य के लिए घणा या प्रेम का भाव मरे हृदय मे कभी आता ही नही ।'[1]

राबिया उन प्रथम मुस्लिम साधको मे थी जिन्हे वास्तव म रहस्यवादी कहा जा सकता है । परमात्मा के प्रति उसका प्रेम इतना अधिक था कि उसे दूसरी किसी वस्तु की आवश्यकता नही प्रतीत होती थी । उसका कहना था कि प्रेम के द्वारा ही परमात्मा को पाना सम्भव है । उस प्रेम की आँच में मानव मन के सारे कलुष जलकर भस्म हो जाते हैं और परम प्रियतम का पाना सहज हो जाता है । इस्लाम धम के कम काण्ड की राख मे राबिया के प्रेम की नित्य जलती हुई लौ ने उस अधकार युग मे मुसलमानो के हृदय पर अधिकार जमाना प्रारम्भ कर दिया ।[3] परमात्मा का प्रेम पाने के लिए और उसके अन त सौ दय क दशन प्राप्त करन क लिए वह सवस्व त्यागने को तत्पर थी । 'हे परमात्मा, इस ससार म हमारे लिए जो कुछ भी तुमने निर्दिष्ट कर रखा है उसे अपने शत्रुओ को प्रदान कर दे । और परलोक का जो कुछ है, उसे अपने उपासको को प्रदान कर दे। मेरे लिए तो तुम ही यथेष्ट हो मैं और कुछ नही चाहती । उसकी यह भी प्राथना थी– 'हे खुदा ! यदि मैं नरक के भय से तेरी उपासना करती हू तो तू मुझे नरक म जला और यदि मैं तेरी उपासना स्वग प्राप्ति की आशा से करती हू तो तू मुझे स्वग से वचित ही रख कि तु यदि मैं तेरी उपासना केवल तेरे लिए ही करती हूँ तो तू अपना चिर सौंदय मुझ स दूर मत रख ।'

1 Apostle of God who does not love thee ? but love of God hath so absorbed me that neither love nor hate of any other thing remains in my heart
A Literary History of Arabs, P 234
--By R A Nicholson

2 R A Nicholson Selected Poems from the Diwan i Sham asi Tobriz (1898)

3 Margaret Smith Studies in Early Mysticism in the Near and middle East (1931)

उस परम प्रियतम का प्रेम प्राप्त किये बिना और बिना उसके मिलन के प्रेमी की प्रम यातनाओ का अवसान नहीं होगा और न उसे शांति ही मिलेगी। उसका सारा जीवन दरिद्रता परमात्मा का ध्यान तथा स्मरण और सर्वाधिक प्रेमाग्नि मे तप्त होते हुए बीता। उसका समस्त जीवन प्रेममय था। उस प्रेम के समस्त सासारिक सभी वस्तुए तुच्छ थी। राबिया मे ही सवप्रथम प्रेम दशन का उदात्त और प्रखर रूप सामने आता है। वह अन्यत्र कहती हैं-'खुदा के प्रेम ने मुझे इतना अभिभूत कर दिया है कि मेरे हृदय मे अन्य किसी के प्रति न तो प्रेम शेष रहा न घृणा शेष रही।'[1]

अनन्य भक्ति और प्रेम तथा परमात्मा के हाथो मे समग्र रूपेण स्वय को समर्पित कर देना ही राबिया की अपनी विशेषता थी। जिसने उसके परवर्ती साधकों को अत्यधिक प्रभावित किया।

द्वितीय युग-(८७० ई० से १००० ई० तक)

द्वितीय युग के प्रारम्भ होने के समय तक अब्बास वश का शासनकाल प्रारम्भ हो गया था। उसके अमात्य बरमक के प्रोत्साहन द्वारा भारतीय विचार धारा का प्रचार भी बढने लगा। मामू ने अपने दरबार मे भिन्न भिन्न धर्मों के प्रतिनिधियो को अध्यात्म विषयक विचार विनिमय के लिए उत्साहित किया जिसका प्रभाव नवविकसित सूफीमत पर भी पडा। इसके अनेक बातो पर तक वितक प्रणाली का भी आश्रय लिया जाने लगा। इसके अतिरिक्त हारू रशीद के राजत्वकाल से अनेक यूनानी दाशनिको के महत्वपूण ग्रन्थो का अनुवाद काय प्रारम्भ हुआ और उसके साथ ही न्याय, भारतीय दशन और विशेष कर बौद्ध दशन एव वेदान्त दशन का भी अध्ययन और अनुशीलन होते रहने से इस्लाम धम के क्षेत्रो म नितान्त नवीन स्रोतो का समावेश हो गया। ईरानी सस्कृति ईसाइयो का भावयोग तथा प्लोटिनस का नव-अफलातूनी सतवाद भी इस अवसर पर प्रभावित करते हुए प्रतीत होते थे और सबके सम्मिश्रण व समन्वय द्वारा एक ऐसी विचारधारा की सष्टि हुई, जिसने परम्परागत इस्लामी धम के भीतर एक प्रकार की क्रान्ति उपस्थित कर दी। फलत उस समय बढते हुए बुद्धिवाद को दबाने के लिए शासको को सजग एव सचेष्ट होना पडा और समय समय पर मत्यु दड की व्यवस्था भी होने लगी।

इस समय के प्रसिद्ध सूफियो म सवप्रथम मारुफुल करखी का नाम आता है। इनका जन्म मेसोपोटामिया के एक प्रमुख नगर वासित मे हुआ था और

1 Margaret Smith, Rabia the mystic (1928)

मत्यु सवत ८७२ म हुई थी। इन्होने नव सूफीमत का पहल प्रचार किया था। इन्हाने सूफीमत की शब्दावली के लिए जो जो परिभाषाएं बनायी व सभी मा य थी और य सूफियो मे श्रद्धा के पात्र हो गय थे। इन्हाने एक सच्चे फकीर कामकाज, भगवच्चिन्तन, भागवदाश्रय एव भगवद्दृष्टि कायकलाप के आधार पर निर्धारित किया था और तसव्वुफ अथवा सूफीमत की प्रमुख विशेषता परमतत्व की अनुभूति एव सासारिक विषया से विरक्ति म मानी थी। कहा जाता है कि परमात्मा के प्रेम मे अहर्निशि निमग्न रहता था। उसका कहना था कि मनुष्य की शिक्षा से प्रेम नही होता वह परमात्मा की कृपा और प्रसन्नता स ही सम्भव हो पाता है। इनके समकालीन अबू सुलैमान अब्दुल रहमान बिन अतिय्या अल दारानी (म० स० ८८७) का भी नाम सूफी साधको म आदर के साथ लिया जाता है। यह वासित का निवासी था। उसने मारिफत (परमज्ञान) के सिद्धान्त पर पूण रूपेण प्रकाश डाला है। यह अतीव कोमल हृदय का व्यक्ति था। यह अत्यत धयवान् था। इसने प्रेम को हृदय का अलकार माना है। इसका कथन है–प्रत्यक वस्तु के लिए एक एक अलकार है। हृदय का अलकार सहज प्रेमाद्भाव है।[1]

अबू अल दारानी के कुछ ही समय बाद जून नून मिस्री का नाम आता है। यह मिश्र देश का निवासी था। इसका ज म सन ७९६ ई० म इखमीम मे हुआ था और उसकी मत्यु सन ८६० ई० मे हुई। वह एक बहुत बडा सूफी साधक और विचारक था। उसने सूफी सिद्धान्तो की बडी सुन्दर विवेचना की है। वह सवप्रथम व्यक्ति है जिसने सूफी माग का विशद विवचन किया है। *राबिया ने जिस प्रम भावना का परिचय दिया था, उसका अनुभव जन नून ने* किया। उनका कहना था कि–'प्रम ईश्वरीय देन है जिसे किसी मानव से नहा सीखा जा सकता है।'[2] जून नून मिश्री ने पूण तौहीद की विवेचना कर इस्लाम को प्रेम का महत्व समझने के लिए बाध्य किया। अल्लाह की अन यता प्रतिपादित करते हुए उसने अन्य सभी वस्तुओ के अनस्तित्व का राग अलापा। उसन कहा कि ईश्वरीय प्रम एक रहस्य है जिसका केवल अनुभव करने का श्रेय ही प्रेम है। जून नून न सूफीमत को अपनी विचार परिपक्वता से पुष्ट किया। उन्होने इल्म और मारिफत मे ज्ञान और प्रज्ञान मे भेद स्थापित किया और स्पष्ट कहा कि ईश्वरीय ज्ञान या मारिफत का सम्बन्ध मुहब्बत या परम प्रम

१ डा० रामपूजन तिवारी–सूफीमत–साधना और साहित्य–पृ० २३७

2 Tadhakiratu ı Awalıya P 272–12

ते है।"[1] इन्होंने सूफीमत मे सवप्रथम अध्यात्म विद्या और भाववेश या हाल का भी समावेश किया। जून नून ने सभा, हाल, तौहीद तौबा, करामात आदि प्रसगो पर भी विचार प्रकट किये तथा प्रेम को साध्य रूप म प्रतिष्ठित कर दिया।

इस युग के अन्य प्रसिद्ध सूफियो म अबू माज़ीद अथवा बायजीद अल बिस्तामी का नाम आता है। य पर्सिया के निवासी थे। इनके जीवन के विषय म अधिक ज्ञात नहा है। ये मातभक्त थे और माता की कृपा से ही आध्यात्मिक साधना मे लगे थे। सूफी सिद्धा त के विकास म इसका बहुत बडा योग है। ये पर्सिया के बिस्ताम स्थान के निवासी थ, इसीलिए वह अल बिस्तामी कहलात हैं। इनका पूरा नाम अबू माज़ीद तैफूर बिन ईसा अल बिस्तामी था। इन्होंने भी प्रेम को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। ज्ञान की भाँति प्रेम भी तत्वत एक दवी वरदान है, यह कोई ऐसी वस्तु नही है जो प्राप्त की जा सके। प्रेम एक ऐसी उत्प्रेरक शक्ति है जो साधक को आध्यात्मिक माग म अग्रसर कर देती है। यह एक ऐसी वासना है जो सभी वासनाओ को उससे दूर कर देती है। यदि सारे ससार के लाग भी प्रेम को आकर्षित करना चाह ता नही कर सकते और यदि वे इस हटाने का अत्यधिक प्रयास करें ता वे ऐसा नही कर सकते।'[2] परमात्मा से वही प्रेम करते हैं जिनसे परमात्मा प्रेम करना है। बायजीद न कहा है-'मैं समझता था कि मैं परमात्मा स प्रेम करता हू परन्तु ध्यानपूवक देखने पर ज्ञात हुआ कि मेरे प्रेम करने स पहले ही वह मुझ से प्रेम करता है।'[3] वह प्रेम की महत्ता को स्पष्ट करते हुए अन्यत्र कहता है कि-'दुनियाँ से शत्रुता कर जब मैं परमात्मा की शरण म गया तो उसके प्रेम न मेरे ऊपर इतना अधिकार कर लिया कि मैं अपना स्वयमेव शत्रु बन गया।"[4] इस प्रेम मे ही मारीफ (ईश्वरीय ज्ञान) प्राप्त होता है। कहा जाता है कि याहिया बिन मुआध ने अबू माज़ीद के पास लिखा कि उस आदमी के विषय म आपकी क्या राय है जो प्रेम सिन्धु का एक बिन्दु पीकर मस्तमौला बन जाता है।'[5]

---

1 R A Nicholson Idia of Personality in Sufism P 91
२ डा० नमन्देश्वर चतुर्वेदी-इस्लाम के सूफी साधक-पृ० ९७
३ डा० रामपूजन तिवारी-सूफीमत-साधना और साहित्य-पृ० ३१०
४ वही ३१०
5 A L Hujwiri-The Kashf Al-Mahjub Trans Roynold A Nicholson (1911)

बायज़ीद ने उत्तर मे लिखा कि 'आप उसके विषय म क्या कहगे, यदि ससार के सभी सिन्धु प्रेम की मदिरा से परिपूण कर दिये जाँय, इन्ह पी जाय और फिर भी अपनी पिपासा शान्त्यर्थ अत्यधिक चिल्लाता रहे।"[1] तथापि प्रम को वह साधक और परमात्मा के मध्य पट सदृश मानता है। "क्योकि प्रेम के अस्तित्व मे ही द्वैत निहित है।[2] वह उसी को श्रेष्ठ मानता है जिसकी कोई अपनी इच्छा न हो और परमात्मा की इच्छा ही उसकी इच्छा हो।

इसके पश्चात बगदाद निवासी अल जुनद (म० स० ९४६) ने उक्त मिस्री की उपदेशावली को क्रमबद्ध रूप म प्रकाशित किया और उनके शिष्य खोरासानी शिबली ने उसका सवत्र प्रचार और प्रसार किया। जुनद अपने समय के सूफी साधको म अग्रगण्य माने जाते थे। किन्तु वे सनातन पथी इस्लाम एव सूफीमत मे सामञ्जस्य स्थापित करने के भी पक्षपाती थी। जुनद ने प्रेम को परिभाषित करते हुए कहा है 'प्रिय की विशेषताओ म अपनी विशेषता का विलय ही 'प्रेम' है। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि प्रेम की विशेषता यह होती है कि अपने निज के अस्तित्व को समाप्त कर दिया जाय। यह आनन्द ऐसा है कि इस पर नियन्त्रण नही किया जा सकता है। यह ईश्वरीय कृपा है जो निरन्तर विनय करते रहने और आकाक्षा करते रहने से प्राप्त होती है।[3]

इस युग मे सूफियो मे सबसे प्रसिद्ध नाम हुसन बिन मसूर अथवा हल्लाज का था। उसका पूरा नाम अबुल मुगीस अल हुसन बिन मसूर अल हल्लाज था। उसका जन्म ईसा की नवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध (सन ८५८ ई०) मे हुआ था। फिहरिस्त[4] के अनुसार वह पर्सिया का निवासी था किन्तु इस बात का स्पष्ट पता नही चलता कि वह निशापुर, मव तालीकन, रे अथवा कूहिस्तान म कहाँ का निवासी था। इब्नुल जवज़ी[5] के अनुसार अल हल्लाज का पिता मह फारस के बजा स्थान का था और भागी धम का अनुयायी था। २६ माच सन ९२२ ई० दिन मगलवार को उसे शूली पर चढा दिया गया।

---

1 A L Hujwiri–The Kashf Al–Mahjub Trans Roynold A Nicholson (1911)

2 Ibid

3 R A Nicholson Mystic of Islam page 112

4 E G Browne Literary History of Persia, Page 428

5 Ibid p 434

यजीद ने जिस सत्य की अनुभूति की थी। मसूर ने उसी सत्य को आत्म रूप बना लिया। मसूर ने स्वयं को ही सत्य माना है। वह अनलहक हो गया।[1] प्रेम को उसने परमात्मा के सत्य का सार के रूप में स्वीकार किया है। वह मानता है कि प्रेम की महत्ता बिना प्रतिकार किये दुःख सहिष्णु होने में है। उसका कथन है मैं वही हूँ जिसको प्रेम करता हूँ, जिसे प्रेम करता हूँ वह मैं ही हूँ। हम एक शरीर के दो प्राण हैं यदि तू मुझे देखता है तो उसे देखता है। यदि उसे देखता है तो हम दोनों को देखता है।'[2]

मसूर अल हल्लाज ने कहा है ईश्वर से मिलन तभी सभव है जब हम कष्टों के मध्य से होकर गुजरें।[3] इसीलिए सूफी साहित्य मे प्रेमी को भयकर कष्टों का सामना करना पड़ता है। उसका सबल दर्द विरह और तड़पन है। अब्दुल कादिर जिलानी ने अपनी एक गजल में कहा है हमारे झोपड़े के दरवाजे बेपर्दा दाखिल हो जा क्योंकि मेरे घर में दर्द के सिवाय और कोई नहीं है।[4] एकबार एक फकीर ने उससे पूछा कि 'प्रेम क्या है ? उसने उत्तर दिया आज देखोगे कल देखोगे परसों देखोगे।

इस काल के सूफी साधकों में अल फराबी का एक विशिष्ट स्थान है। सूफी दार्शनिक अल फराबी (सन ९५०–१००७ ई०) ने प्रेम को ही ईश्वर माना है और सृष्टि का कारण भी उन्होंने प्रेम को ही स्वीकार किया है। उसका मत है भौतिक वस्तुओं तथा ज्ञान और बुद्धि से परे एक विशिष्ट वस्तु है, जिसे प्रेम कहते हैं। प्रेम के सहारे इस सृष्टि में प्रत्येक वस्तु जिसमें व्यक्ति भी सम्मिलित है अपनी समग्र पूर्णता पर पहुँच जाती है।[5]

---

1 R A Nicholson Idea of Personality in sufism p 29

2 If you do not recognise God he sayest at least recognise his signs I am that sign I am the creative truth
Studies in Islamic Mysticism, p 84
By—R A Nicholson

3 Outlines of Islamic Culture page 350

४ व हजा बाना दर्द आ अर्ज दरे काशा नये या।
के कसी नेस्त वजुज दर्द तो दरखा नये मा॥
—दीवाने गौसुल आजम पृ० १७ कुतुबखाना नजीरिया उर्दू बाजार, देहली।

5 R A Nicholson Mystics of Islam page 112.

सूफियो का कथन है कि ईश्वर ने अपना बोध कराने के लिए सष्टि की रचना की। अपने मत की पुष्टि के लिए एक हदीस का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। 1' मैं एक गुप्त कोष था। मेरी ईहा थी कि मुझे सब लोग जानें। अत मैंने मखलूक (सष्टि) की रचना की। 'अल फराबी ने भी इस स्वीकार किया और कहा है कि 'ईश्वर स्वय प्रेम है। सष्टि की रचना का कारण भी प्रेम ही है। प्रेम के सहारे सष्टि की इकाइयाँ प्रेम के महास्रोत मे, जो पूर्ण सौंदर्य और सर्वोत्तम भी है निमग्न हो जाने के लिए पर्णरूपेण सलग्न हैं।'[2]

सुप्रसिद्ध सूफी अजीज बिन मुहम्मद नफ्सी (सन १२०६ ई०) ने भी कुछ इसी प्रकार का मत प्रकट किया है। उनका कथन है आकर्षण ईश्वर का जो व्यक्ति अपनी ओर आकृष्ट करता है काय है। जब तक व्यक्ति पर ईश्वर की अनुकम्पा नही होती और उसको अपनी ओर आकृष्ट नही कर लेता वह वैभव और गौरव म आसक्त रहता है। जब व्यक्ति इस ससार के आकर्षण का परित्याग पूर्णरूपेण कर देता है तब वह ईश्वरोन्मुख हो जाता है और जब उसके हृदय म केवल एकमात्र ईश्वर शेष रहता है तब वह प्रेम म परिवर्तित हो जाता है।'[1]

तृतीय युग (१००० ई०–१५०० ई० तक)

सूफीमत का वास्तविक इतिहास उसके तृतीय युग से ही प्रारम्भ होता है। सूफीमत का सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान कर उसके विभिन्न सिद्धान्तो पर प्रकाश डालने वाले इस युग के ग्रथकारो म कालाबाधी (म० म० १०५२) हुज्विरी (म० स० ११४९) एव गज़ाली (म० म० ११६८) के नाम विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। कालाबाधी ने 'सूफी मतवाद का प्रकृत स्वरूप निर्णय' का सम्पादक ग्रथ लिखा। जिसके द्वारा उन्होने यह प्रतिपादित कर दिखाया कि विचारपूर्वक देखने पर यह मत मूल इस्लाम धर्म का किसी भी प्रकार विरोधी नही है प्रत्युत उसी के सिद्धान्तो का पोषक है।

इसी प्रकार अबुलहसन अल हुज्विरी ने भी अपनी रचना कश्फुल महजब' (रहस्योदघाटन) के द्वारा सूफीमत एव इस्लाम धर्म के मध्य पूर्ण सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा की। इन्होने प्रेम के महत्त्व को स्वीकारा है।

---

१ कुतो कजन मखफियन फअह बबतो अन ओ रफा फखलकु तुल खल्क।
—कुर्आन शरीफ

2 A M A. Shushtery Outlines of Islamic Culture page 311

३ मकसद अक्स का अंग्रेजी अनुवाद आरियटल मिस्टिसिज्म' पृ० १९

कश्फुल महजूब' मे हुज्विरी का कथन है 'आपको जानना चाहिए कि प्रेम को दार्शनिकों ने तीन प्रकार से प्रयुक्त किया है। प्रथम वह प्रेमास्पद के लिए अविराम लालसा झुकाव तथा आसक्ति के रूप में प्रयुक्त होता है। जिसका सम्बन्ध सासारिक वस्तुओ तथा प्राणियो और उनके पारस्परिक प्रेम से होता है। पर वह ईश्वरीय प्रेम नही कहा जा सकता। ईश्वरीय प्रेम सर्वोत्तम वस्तु है। द्वितीय प्रकार के प्रेम का अर्थ ईश्वरीय कृपा है जो ईश्वर द्वारा किसी व्यक्ति को प्राप्त होती है, ऐसे व्यक्तियो को ईश्वर पूर्ण साधुता प्रदान करता है और अपनी अपूर्व कृपा से उसे विशिष्ट बना देता है। तृतीय प्रकार का प्रेम वह होता है जिसमे ईश्वर व्यक्ति को सदकार्य के लिए सदगुण प्रदान करता है।'[1]

प्रेम के स्वरूप को अत्यधिक स्पष्ट करते हुए हुज्विरी ने लिखा है कि "ईश्वर के प्रति मानव का प्रेम वह गुण है जो केवल उन पवित्र व्यक्तियो मे श्रद्धा और गरिमा के रूप म प्रकट होता है जिनकी ईश्वर म आस्था है इस लिए कि वह अपने प्रिय को सतुष्ट कर सके और उसके दर्शनार्थ विकल हो उठे। उसके अतिरिक्त और किसी वस्तु म उनके मन न रमे। ऐसा व्यक्ति उसके स्मरण में लगा रहता है और किसी अन्य का स्मरण नही करता है।"[2]

प्रेमोदय से लेकर ईश्वर स मिलन या उसम फना होने तक की यात्रा मे साधक को अनेक प्रकार की बाधाओ का सामना करना अनिवार्य है। इन बाधाओं मे भी प्रेम निखरता है। हुज्विरी ने लिखा है 'प्रिय के द्वारा जो प्रेमी को दुख पहुँचाया जाता है उसमे प्रेमी को आनन्द की प्राप्ति होती है।[3] प्रेमी म प्रेम होता अत वह प्रिय की कठोरता और उदारता दोनो को एक ही प्रकार झेलता है।', उन्होंने शिबली की कथा देकर इसको स्पष्ट किया है।

प्रेम को अन्यत्र परिभाषित करते हुए हुज्विरी ने कहा है कि 'प्रेम प्रियतम की प्राप्ति के लिए विकलता का ही नाम है।[3]

उपर्युक्त साधको म अधिक गम्भीर विचारक और व्याख्याता अबूहमीद मुहम्मद अल गज़ाली हुए। जिनकी विद्वत्ता एव योग्यता के कारण सूफीमत एव मूल इस्लाम धर्म का पृथक्त्व प्राय लुप्त होता सा दीख पडा और प्रथम

---

१ कश्फुल महजूब अनुवादक–निकलसन पृ० ३०६

२ वही पृ० ३०६–७

३ आउट लाइन आफ इस्लामिक कल्चर वा० २ पृ० ५०२

को द्वितीय के अ तगत सत्ता के लिए स्वीकृत कर लिया गया। ये 'इस्लाम धम में प्रमाण स्वरूप' कहे जाते हैं और सूफी अपने मत को सु यवस्थित करने वालो मे अतिउच्चस्थान प्रदान करते हैं। अल गाज़ली ने सौ न्य को ही प्रेम का जनयिता माना है। वे कहते हैं कि सौ न्य भी घनिष्ठता ही प्रम की घनिष्ठता है। उनका मत है 'सौदय वह है जो वास्तव मे प्रम को जन्म देता है। अत आत्मा सासारिक प्रेम पर ही नही अवलम्बित रहती प्रत्युत इस सौंदय से होते हुए उसकी दृष्टि अन्यत्र लगी रहती है। वह सर्वोत्तम से प्रेम करता है जिसे ईश्वरीय प्रम कहत हैं। यह ससार के सौदय का मूल स्रोत है। इस बात को कदापि अस्वीकार नही किया जा सकता है कि जहाँ सौंदय होगा वहाँ प्रम भी सहज ही हो जायेगा। सौंदय की माया जितनी ही अधिक होगी प्रेम का घनत्व भी उतना अधिक होगा। पूण सौदय ईश्वर में है अत वही सच्चे प्रम का अधिकारी है।[1]

इस प्रकार हम देखते है कि अल गजाली ने भी प्रेम की महत्ता स्वीकार करते हुए सच्चे प्रेम का अधिकारी ईश्वर को ही स्वकीकार किया है।

इस काल के दूसरे प्रसिद्ध सूफी विद्वान शेख शहाबुद्दीन सुहवर्दी का नाम आता है। शेख सुहवर्दी का देहात सवत १२९१ मे हुआ था। इन्होंने भी प्रेम को परिभाषित करते हुए कहा है सौदय के गहरे चिन्तन के लिए हृदय का झुकाव ही प्रेम है।'[2]

शेख सुहवर्दी के अतिरिक्त एक अ य सूफी विद्वान ने लगभग वसा ही काय किया जिसका नाम शेख मुहीउद्दीन इल अरबी (स० १२३१-१२९७) था। इलुल अरबी का प्रेम विषयक दृष्टिकोण अन्य सूफी साधको से भिन्न है। उसने नारी प्रेम को भी ईश्वरीय प्रम माना है। अपने ग्रन्थ– फुसुमुल हिकाय' मे, उ होने कहा है कि जिस प्रकार ईश्वर की प्रतिच्छाया के रूप मे ईश्वर का निर्माण हुआ है उसी प्रकार पुरुष की प्रतिच्छाया के रूप म स्त्री की रचना हुई है। इसलिए व्यक्ति स्त्री और ईश्वर दोनो से प्रेम करता है। स्त्री का पुरुष से वही सम्बन्ध है, जो ईश्वर का प्रकृति से है। अत इस अथ म जब स्त्री से प्रेम किया जाता है तो वह प्रम ईश्वरीय होता है।'[3]

---

१ अल गजाली दी मिस्टिक–मागरट स्मिथ प० १०९

२ शेख शहाबुद्दीन उमर बिन सुहवर्दी आवारिफुल मारिफ अनुवादक— एच० विल्बर फोस क्लाक, प० १०१

3 A M A Shushtery, Qutline of Indian Oulture, page 390

रूमी ने भी एक स्थान पर कहा है "स्त्री ईश्वर की किरण है। वह सासारिक प्रमिका नही है। वह निर्माता है, निर्मित नही।" पर रूमी और अरबी की विचारधारा म मौलिक अतर यह है कि रूमी अपने जीवन दशन म स्पष्ट हैं कि सासारिक स्नेह ईश्वरीय स्नेह नही है। उनका कथन है 'इस ससार म रहकर आत्मा को शुद्ध कर लो तब प्रियतम (ईश्वर) प्राप्त होगा। एक शेर मे भी उ हान कहा है मसार के नश्वर पदार्थों से प्रेम किस काम का प्रेम तो वह है जा ईश्वर से होता है। [2]

इब्नुल अरबी क अनसार सासारिक प्रम भी ई वरीय प्रेम की भाति है। कहा जाता है कि निजाम नामक एक स्त्री स उनका स्नह सम्ब ध था। 'तजमानुल अश्वाक म उसन सम्भवत उसक प्रति ही अपना प्रणय निवेदन किया है। निजाम अति रमणीया थी। फकीरी जीवन व्यतीत करती थी। प्रगल्भ वक्ता भी थी।' अत स्पष्ट है कि नारी प्रेम को भी इब्नुल अरबी ईश्व - रीय प्रम की भाँति पवित्र मानते हैं।

इब्नुल अरबी यह घोषित करता है कि 'प्रेम रूपी धम और परमात्मा के प्रति औत्सुक्य से श्रेष्ठ अ य कोई धम नही है। प्रम सब धर्मों का सार है, चाहे वह जो रूप धारण करे। सच्चा रहस्यवादी इसका सदव स्वागत करता है। जब प्रेमी म प्रम का पूण स्फुरण हो जाता है तब वह ससार को समभाव से देखन लगता है। उसके हृदय म मुसलमान, ईसाई हि दू का कोई भेद भाव नहीं रह जाता है। 'उसका धर्म केवल एक रह जाता है।' वह है प्रेम का धम।' रूमी ने भी एक स्थान पर कहा है। 'प्रम धम सभी धर्मों से अलग है। ईश्वरानुरागियो के लिए ईश्वर के अतिरिक्त कोई धम नहीं है।' [4]

इब्नुल अरबी ने अपने ग्र थ तजु मानु लअश्वाक मे प्रेम प्रभाव को स्पष्ट करते हुए कहा है मेरा हृदय प्रत्येक रूप के योग्य हो गया है। यह मृग शावको के लिए चारागाह है और ईसाई साधुओं के लिए मठ है मूर्तियो के लिए मन्दिर है और हाफी के लिए काबा है। शरीयत की तख्तों और कुरान का ग्र थ है मैं प्रेम धम का अनुगामी हूँ। प्रेम को ऊट मुझे जिस ओर ले जाते

1 R A Nicholson, Rumi tho Pod and Mystic, page 44
२ मौलाना रूम श्री जगदीशचन्द्र वाचस्पति पृ० १६९
३ दी फिलासफी आफ इब्न अरबी--रोम जादयू पृ० ८५-८६
४ रूमी पोयट एड मिस्टिक श्री ए० निकलसन पृ० १७१
(एलेन एण्ड अनविन लदन)

हैं, उस ओर जाता हूँ। मेरा धर्म और मेरा विश्वास सच्चा धर्म है।"[1]

प्रेम बुद्धि का मार्ग नहीं चुनता। उसका पथ श्रद्धा और विश्वास का होता है। सूफियों ने प्रायः इस पर बल दिया है कि प्रेम मार्ग में अग्रसर होना चाहते हो तो तर्क और बुद्धि का सहारा न लो। अपने को पूर्णरूपेण दे डालो। ख्वाजामुईनुद्दीन चिश्ती ने कहा है "ए मुईन ! अक्ल की आँख से दोस्त का हुस्न न देख। तू मजनू की आँख से लैला के हुस्न को देख।"[2]

तेरहवीं शताब्दी सूफीमत का प्रचार काल है। यह वही समय है जब ईरान के प्रमुख सूफी काव्यकारों ने इसे अपनी पुष्ट लेखनी द्वारा हृदयग्राही बनाया। जिसका अनुकरण भारतीय सूफियों ने किया। सूफीमत की सबसे सफल अभिव्यक्ति सनाई काव्य में हुई। सनाई (म० स० ११८८) ने सूफियाना रंग में 'हदीक तुल हकीका' काव्य लिखा। इसके पूर्व अरबी में अलसराज, अल कुशैरी तथा,अल अंसारी गद्य में सूफी मत को प्रकट कर चुके थे। सनाई से काव्य की प्रेरणा संभवतः इन्हीं लेखकों से मिली। फारसी के परवर्ती सूफी काव्य पर सनाई का पूर्ण प्रभाव है। रूमी ने एक शेर में सनाई को मान्यता प्रदान की है—

> अत्तार रूह बूद ओसनाई दु चश्मे।
> मा अज पयसनाई यो अत्तार आमदम ॥"[3]

---

१ लकद सारा कुल वी शाविलन कुल्ला सूरतिन।
फमर ई लगिज लानन व दरुन ते रुह वानिन ॥
ब वसीतुन ला औसानिन वकावतो ताय फिन।
व अल वाहो तौरातिन वमूसह फो कुरानिन ॥
अदीनो वे दीनल हुब्ब अनी वतज्जहत।
रकामी वहू फद्दीना दीनी व ईमानी ॥'
—तर्जुमानुल अश्वाक शौक पृ० १९, रायल एशियाटिक सोसाइटी लंदन।

२ 'मुईन बचश्मे खिरद हुस्ने दोस्त न तुमायद।
बबीं नदीयये मजनू जमाले लैला रा ॥
—दीवान ख्वाजा गरीब नेवाज पृ० २४ सु० मुस्लिम अहमद निजामी उर्दू बाजार, जामा मस्जिद, दिल्ली।

3 E G Browne A Literary History of Persia Vol II page 317

"अत्तार रूह था और सनाई उसकी दो आँखें । हम सनाई तथा अत्तार के बाद आये हैं ।"

सनाई की परम्परा में अनेक प्रख्यात कवि हुए । जिनमें उमर खय्याम (म० स० ११८०), निजामी (मृ० स० १२६०) और अत्तार (मृ० स० १२८७) के नाम प्रमुख हैं । इन फारसी कवियों की परम्परा बहुत आगे तक चली और इनमे रूमी (मृ० स० १३३०) सादी (मृ० स० १३४९), नख्शबी (मृ० स० १३७७), हाफीज (मृ० स० १४४७) एवं जामी (मृ० स० १५५९) जैसे प्रतिभाशाली कवि उत्पन्न हुए । जिन पर फारसी साहित्य को आज भी गर्व है ।

इन कवियों ने लौकिक कथाओं या प्रतीकों के माध्यम से अपनी दिव्य भावनाओं का प्रकाशन किया है । ईश्वरीय प्रेम को प्रकट करने के लिए लौकिक प्रेम की भाषा को अपनाया है । सांसारिक स्नेह ही वह वर्णमाला है, जिसको हृदयंगम कर सूफी ईश्वरीय मसार में प्रवेश करना चाहते हैं । सूफियों का एक मुहावरा है 'अल मजाजो कंतरतुल हकीका' अर्थात् मजाज हकीकत का फल है ।" अत सांसारिक प्रेम और उसकी भाषा अपना कर चलने में सूफियों को किसी भी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई ।

निजामी का लैला मजनूं सूफी विचारधारा की एक प्रौढ़ कृति है । जिसमें कवि ने प्रेम साधना को पूर्णरूपेण स्पष्ट किया है । प्रेम का महत्त्व बतलाते हुए उसने लिखा है जो इश्क हमेशा नहीं रहने वाला है वह जवानी की ख्वाहिशात का खेल है । इश्क वह है जो कम न हो और उससे कदम न हटे । मजनूं जब तक जिन्दा रहा इश्क का बोझ उठाता रहा । फूल की तरह इश्क की नसीम के साथ खुश रहा ।[१]

लैला मजनूं के प्रेम के माध्यम से हकीकी प्रेम को स्पष्ट करने का प्रयास

---

१ "इश्के के न इश्क जावे जानीस्त ।
बाजी चये शहवते जवानीस्त ॥
इश्क आ बाशद कि कम न गर्दद ।
ता बाशद अजा कदम न गर्दद ॥
ता जिंदा व इश्क बारकश बूद ।
चूं गुल बनसीम इश्क खुशबूद ॥

लैला मजनूं निजामी, पृ० ३०
नवलकिशोर प्रेस लखनऊ १८८० ई० ।

जलालुद्दीन रूमी यह घोषित करता है कि आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम परमात्मा का आत्मा के प्रति प्रेम है और आत्मा से प्रेम करने में परमात्मा स्वयं अपने से प्रेम करता है क्योंकि आत्मा जो कुछ दैवी तत्व है, उसे वह अपने पास खींच लेता है।

इस प्रकार सूफी साधकों ने आत्मा का परमात्मा के प्रति और परमात्मा का आत्मा के प्रति प्रेम–दोनों को एक दूसरे का पूरक बताते हुए अन्योन्याश्रित सिद्ध किया है।

पन्द्रहवीं शताब्दी के फारसी के श्रेष्ठ सूफी कवियों में जामी का अति महत्वपूर्ण स्थान है। जामी एक बहुत बड़ा कवि एवं बहुत बड़ा विचारक और एक बहुत बड़ा साधक था। उसका पूरा नाम मुल्ला नूरुद्दीन अब्दुर्रहमान जामी था। वह खुरासान के जामनगर का निवासी था। इसीलिए वह जामी कहलाया। उसका जन्म सन् १४१४ ई० में हुआ था। वह सूफियों में नक्श–बन्दिया सम्प्रदाय का था। उसने परमात्मा को परम सौन्दर्य कहा है। उसका कथन था कि सुन्दर वस्तुएँ मानो उस परम सौन्दर्य के साथ हमारा सम्बन्ध स्थापित करती हैं क्योंकि परमात्मा ने अपने सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए ही सृष्टि की रचना किया है। इसीलिए वह प्रेम को साधना में स्थान देता है। प्रेमकर्ता ही उसे प्राप्त कर सकता है स्वयं पर, प्रेम के द्वारा ही विजय प्राप्त की जा सकती है। सभी प्रकार के स्वार्थ सभी प्रकार की तुच्छताओं से स्वयं को बचाने के लिए प्रेम की ही सहायता लेनी चाहिए। प्रेम के सहारे उस बंधन को जो इस संसार में निबन्ध कर देता है परमात्मा से मिलन का साधन बनाया जा सकता है। यह दृश्यमान जगत ही मानो साधक और परमात्मा के बीच की कड़ी हो जाता है। अतएव जामी ने प्रेम की साधना को परमात्मा की प्राप्ति के लिए सोपान माना है।

जामी ने यूसुफ जुलैखा में कहा है "प्रेम के द्वारा ही अपने स्व से मुक्ति प्राप्त हो सकती है। युवावस्था में विचार सांसारिक प्रेम की ओर झुकते हैं। यही सांसारिक प्रेम इश्वरीय प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। यह प्रारम्भिक वर्णमाला है। तत्पश्चात हम ईश्वरीय संसार का ग्रहण करते हैं। और उसके सहारे इसका अध्ययन करते हैं।[1] जामी ने आगे कहा है "सांसारिक प्रेम को छक कर पिया ताकि तुम्हारे होंठ और अधिक शुद्ध प्रेम का सुरापान

१ यूसुफ एण्ड जुलेखा, अनु०–रेल्फ टी० एच० ग्रिफिथ, लन्दन पृ० २४

कर सके ।"[1]

निजामी न प्रेम की जिस उच्च भावभूमि पर लैला मजनू के प्रेम को स्थिर किया है प्रेम की उसी भावभूमि पर (जामी) ने 'यूसुफ-जुलेखा' के प्रेम को प्रतिष्ठित किया है । जामी प्रारम्भ म ही कहता है उसके सौदय ने ही लला की मुखाकृति को सुदर बनाया । जिसके प्रत्यक केश पर मजनू लुब्ध हो गया । उसने शीरी के मधुराधरो की रचना की जिस पर परवेज और फरहाद का हृदय आसक्त हो गया । उसके कारण ही यूसुफ का मस्तक उन्नत हुआ और उस पर दृष्टि डालते ही जुलेखा मिट गयी ।[2]

जामी ने अपनो मसनवी म ईश्वर को शाश्वत सौदय के नाम स अभिहित किया है । यह सौदय सासारिक समस्त सौदय म सवश्रेष्ठ है ।[3] उन्होने यूसुफ और जुलेखा म सासारिक स्नेह स्वीकार कर ईश्वरीय प्रेम प्राप्त करने का आदश प्रस्तुत किया है । उनका वचन है सासारिक स्नेह का रसपान करो। जिससे पवित्र प्रम की सुरा से परिचित हो सको । परन्तु अपनी आत्मा को वहाँ अधिक समय तक स्थिर न रहन दो । इस पुल स गुजर जाओ । शीघ्रता स आगे बढ जाओ ।"[4]

सूफियो का विश्वास है कि परमात्मा प्रेमस्वरूप है और वह उन व्यक्तियो को उसका भेद नही बतलाता है, जिसन अपने सासारिक कालुष्य का प्रक्षालन पूणरूपेण नही किया है और जिसने सासारिक वस्तुओ के लोभ का परित्याग नही किया है उसे उस प्रम को प्राप्त करने का अधिकार नही है । जो भगवान् से प्रेम करते हैं, भगवान् उनसे प्रम करता है । विशुद्ध आत्मा परमात्मा की प्रतिच्छवि है । अत उसे प्रेम करने का अधिकार प्रदान कर परमात्मा मानो अपने को ही अधिकार देता है । परमात्मा के प्रति उसीका प्रेम होता है जिससे परमात्मा स्वयमेव प्रेम करता है । अपने प्रेमियो के हृदय मे प्रेम को धरोहर के रूप में रख देता है । सूफी कहते हैं कि परमात्मा ही प्रेम है और अपने ही

---

1 "Drink deep of earthly love that so my lip Many learn the Wine of holier love to sip ' Ibid P 24

२ वही, पृ० २१

३ Yes thought she shrink from earthly loves call Eternal beauty is the queen of all Ibid , p 29

४ यूसुफ–जुलेखा जामी पृ० २४

आनन्द के लिए उसे मानव मानस मे उत्पन्न करता है। और उसकी परिणति भी प्रम म ही होती है। ब्ययजीद विस्तायी का कहना है कि "मैं समझता था कि परमात्मा से प्रेम करता हूँ परन्तु ध्यानपूवक देखने पर ज्ञात हुआ कि मेरे प्रेम करन के पहले ही वह मुझसे प्रेम करता है। इस प्रकार के प्रेम को प्राप्त कर प्रेमी और प्रियतम दोनो ही परितुष्ट होते हैं। प्रेम के द्वारा जब प्रेमी के सारे अन्तद्व द्वो, सभी वासनाओं का अन्त हो जाता है तब वह अप्रसरित होता है और उसे परमात्म दशन होते हैं।

पर तु परमात्मा और मनुष्य के इस प्रेम सम्बन्ध म जो बात मानव पर लक्षित होती है वह परमात्मा पर नही। सूफियो ने परमात्मा के प्रति मनुष्य के प्रेम के विषय में तो अधिक कहा है परन्तु मनुष्य के प्रति परमात्मा के प्रेम की बात बहुत कम कही है। तथापि इतना स्पष्ट है कि मानव मानस के बीच जो रागात्मक सम्बन्ध होता है, वसा वस्तु परमात्मा और मनुष्य के प्रेम सम्बन्धी नहीं है। मनुष्य के प्रति परमात्मा का प्रेम उसकी दयालुता के कारण है। जब कि मानव के लिए यह आवश्यक है कि वह परमात्मा से प्रेम करे। जामी न कहा है कि मैं वही हूँ जिसे मैं प्यार करता हू और जिससे मैं प्रेम करता हूँ वह मैं ही हूँ। एक शरीर म निवास करने वाले हम दो प्राण हैं। यदि तुम मुझे देखते हो तो तुम उसे दखते हो और यदि तुम उसे देखते हो तो तुम हम दोनो को दख रह हो।

अन्य सूफी साधको ने भी प्रेम के स्वरूप और उसके सम्बन्ध म काफी कहा है। सूफी साधक अल शिबली' का कथन है कि 'प्रम हृदय म अग्नि के समान है जो परमात्मा की इच्छा क अतिरिक्त अन्य सभी वस्तुओ को जला कर भस्मीभूत कर देता है।' अल हुज्विरी ने कहा है कि 'परमात्मा के प्रेमी के पास इच्छा नाम की कोई वस्तु नहा रह जाती कि वह सदसद् वस्तु की ईहा कर क्योंकि वह परमात्मा का प्रेमी है। उसके लिए परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी वस्तु अभीप्सित नही होती।'[२]

अपनी समस्त कामनाओ के साथ अपन को समर्पित कर देने मे ही प्रेमी सुख प्राप्त करता है। किसी भी वस्तु को अपन प्रियतम पर योछावर कर देने मे उसे हिचक नही होती वह समझता है कि अपने समस्त को देकर उसे प्राप्त कर सकता है। अबू अब्दुला अल कुरशी ने कहा है कि 'सच्चे प्रेम का

१ डॉ० रामपूजन तिवारी सूफीमत–साधना और साहित्य पृ० ३१०
२ वही पृ० ३१०

तात्पय है कि तुम जिस परम प्रियतम से प्रेम करते हो उसे सवस्व, जो कुछ तुम्हारे पास है, समर्पित कर दो जिसम कि तुम्हारा अपना कहने को कुछ भी न रह जाय।'[1] इसका तात्पय केवल इतना ही नहीं कि प्रेम में अपनी सासारिक वस्तुओ और कामनाओ का ही परित्याग करना पडता है प्रत्युत उसे पूणरूपेण अपने को उस परम प्रियतम को समर्पित कर दना पडता है। बिना ऐसा किये उस अलौकिक प्रेम का वह अधिकारी नही हो सकता।

शेख शादी प्रम को पारभाषित करते हुए कहत हैं कि यह ईश्वरीय प्रेम कुछ ऐसा निराला है कि इसम एक बार गिरफ्तार हुआ व्यक्ति कभी बन्धन मोक्ष की कामना नही करता। इस प्रेम बन्धन म बद्ध व्यक्ति मुक्ति ही नहीं चाहता–

'असीरी रस न ख्वाहद रिहाई जे बन्द।
शिकारश नख्वाहद खलास अज कमन्द॥'[2]

इस प्रम माधुय के कारण कटु भी मीठा हो जाता है। प्रमी शूल को फूल समझ लेता है। इस प्रमोन्माद मे शूली सिंहासन और कारागार उद्यान बन जाता है। मसूर अल हल्लाज इसी तरग म हँसते शूली पर चढ गया था। निस्सदेह प्रम स्वर्गीय गुणो का उत्स है। प्रेम की इस बेकली को जान कर प्रेम पात्र का मन द्रवित हो जाता है। यदि कोई सच्चा प्रमी है, सच्चे प्रेम मे व्याकुल है तो उसका प्यार अवश्य उस मिलेगा–

'आशिक कि शुद के यार बहालश नजर न कद॥'[3]

जब इश्क मजाजी इश्क हकीकी मे परिणत हो जाता है तब साधक को आत्मानन्द की अनुभूति होती है। वह ध्यान द्वारा ईश्वरीय सौन्दय पर विस्मय विमुग्ध होता हुआ चरम साक्षात्काराथ प्रयत्नशील रहता है। एक ऐसी स्थिति आती है जब प्रेमी स्वय प्रेम रूप हो जाता है। प्रेम की एक ऐसी रागिनी छोड देता है जिसके प्रभाव से प्रेमी का सम्पूण व्यक्तित्व प्रममय हो जाता है।

वर उदे दिलय नवाम्त यक जम जमा इश्क।
जा जमजमा अम जे पाए ता सर हम इश्क॥

सच्चा प्रेमी सदा प्रणय की मदिरा में मतवाला रहना चाहता है–

१ डा० रामपूजन तिवारी सूफीमत–साधना और साहित्य पृ० ३११
२ ईरान के सूफी कवि (शेख शादी) पृ० २२४
३ वही (हाफीज) पृ० ३३८
४ वही (जामी) पृ० ४००

"मैं कव्वते जिस्मो कुव्वते जानस्त मरा ।
मैं काशिफे असरारे निहानस्त मरा ॥
दीगर तल्वे दीनवो उक्वा न कुनम ।
यक जुरआ पुर अज हर दो जहां नस्त मरा ॥"[1]

अत कहा जा सकता है कि "सूफियो के रति मे माधुर्य के साथ साथ मादक भाव भी रहता है, परन्तु उसमे निहित वासनाओ को पवित्र वासना ही कहना उचित है क्योकि ईश्वरीय रति का आनन्द नित्य और शान्तिप्रद होता है।"[2]

उपर्युक्त पंक्तियो मे कहा जा चुका है कि ईश्वर से प्रेम करना, उसकी प्रेमानुभूति द्वारा उसका साक्षात्कार करना और उसकी सत्ता मे अपनी सत्ता का विलयन ही सूफी साधना का चरमोद्देश्य है। साधक की उत्कट प्रेमानुभूति अनिर्वचनीय होती है। उसकी अभिव्यक्ति अति कठिन है। यही कारण है कि सूफी कवि एव साधक रूप को प्रतीको का आश्रय लेते हैं। सनाई, अत्तार, रूमी निजामी, जामी आदि सूफी कवियो ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीको, रूपको, सकेतो और तर्कों का आश्रय लिया है।

सूफी कवियो की यह स्पष्ट घोषणा है कि इश्क मजाजी इश्क हकीकी का सोपान है और इसी के द्वारा मानव खुदी का समाप्त कर खुदी बन जाता है। सूफियो के प्रेमभाव का उदय सवप्रथम देवदास और देवदासियो मे हुआ। कर्मकाण्डी नबियो के घोर विरोध के कारण उसको परमप्रेम की उपाधि प्राप्त हुई। सूफी साधको को अनेकानेक बाधाओ का सामना करना पडा। प्रमोन्मत्त मसूर को अन अल्हक कहने के अपराध मे सूली पर चढाया गया। राबिया को जीवन भर दुख के सागर का सतरण करना पडा। इस प्रकार अनेक प्रत्यूहो का प्रत्याख्यान करते हुए प्रमपथि के ये सच्चे साधक अपने प्रेम-पथ पर प्रगतिमान रहे। ईरान अरब भारत आदि देशो मे इस साधना का प्रचार और प्रसार हुआ। आठवी नवी शताब्दी मे इसी प्रेम साधना ने इस्लाम धर्म के अन्तर्गत सूफी प्रेम भावना का रूप ग्रहण किया। राबिया से अल गज्जाली के समय तक अविच्छिन्न रूप से इस्लाम के साथ ही प्रेम या मादन भाव की सूफी साधना भी चलती रही। सूफियो की साधना का मूल मन्त्र है 'प्रेम'। सूफी

१ ईरान के सूफी कवि (उमर खय्याम) पृ० ५१
२ डा० शिवसहाय पाठक मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य पृ० ४१८

साधक परम प्रेममय ईश्वर की जिक्र (नामस्मरण) एव फिक्र (ध्यान) म दिवाने बने रहते हैं और सासारिक सभी ऐश्वय को वे प्रेम-रूप की मुहब्बत में पाते हैं। वे प्रत्येक कण मे प्रियतम का जलवा देखते हैं–

'वेहि जावी यह कि हर जर्रे म जलवा आशिकार।
फिर भी पर्दा यह कि सूरत आज तक देखी नही।'

वस्तुत सूफी साधको का प्रधान लक्ष्य यह है कि सष्टि के कण कण म प्रियतम का जलवा देखना और उसके प्रेम विरह म तडपन प्रलपन का आनन्द उठाना साक्षात्कार की अनुभूति प्राप्त करना और अन्ततोगत्वा चिर मिलन का आन द प्राप्त करना।

इससे स्पष्ट है कि लौकिक प्रेम जब उच्च पवित्र और व्यापक भावभूमि पर पहुँच जाता है तब वह ईश्वरीय प्रेम में परिणत हो जाता है। भारतवष का सूफी काव्य भी इसी प्रकार की विचारधारा से पूर्णरूपेण प्रभावित है। भारतीय सूफी कवि कुतुवन मझन, जायसी आदि ने लौकिक प्रम के व्याज पारलौकिक प्रेम का वणन किया है।

भारत मे सूफी मत का प्रवेश और प्रेम-काव्यो का प्रारम्भ

भारत म सूफी धम का प्रवेश ईसा की बारहवी शताब्दी म हुआ। यह धम चार सप्रदायो के रूप म आया। जो समय समय पर देश मे प्रचलित हुए। इन सम्प्रदायो स प्रभावित प्रेम-काव्य का परिचय चारण काल से ही मिलना प्रारम्भ हो जाता है। जिस समय मुल्ला दाऊद ने च दायन' की रचना की थी। यह समय अलाउद्दीन खिलजी का राजत्व काल था। हिन्दू धम के प्रति अश्रद्धा होते हुए भी कुछ मुसलमानी हृदयो मे हिन्दू प्रेम कथा के भाव विद्यमान थे। 'चन्दायन या चन्दावत' प्रेम-काव्य सवत १३७५ के आसपास की साहित्यिक मनोवत्ति का परिचय देन मे पर्याप्त है।'[1]

धार्मिक काल के प्रेमकाव्य का प्रारम्भ चन्दायन या 'च दावत' से ही होता है। यद्यपि इस प्रेम कथा की परम्परा बहुत बाद म प्रारम्भ हुई। सूफी प्रेमाख्यानो की परम्परा हिन्दी मे मुल्ला दाऊद स प्रारम्भ होती है। उनका 'च दायन सन १३८० मे लिखा गया।'[2]

मझन ने मधुमालती मे प्रेम को बहुत स्पष्ट रूप से विवत करने का

१ डा० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृ० ३०६

२ प० परशुराम चतुर्वेदी सूफी काव्य सग्रह प० ७८

प्रयत्न किया है । सूफी कवियों मे किसी भी अन्य सूफी कवि ने इतनी पूर्णता के साथ प्रस्तुत नही किया है । यह विवत्ति कथा भाग मे लेखक ने उस समय उपस्थित की है जब कथा नायक मनोहर कथा की नायिका मधुमालती से पहली बार अप्सराओं की सहायता से साक्षात्कार लाभ करता है । मधुमालती के प्रश्न करने पर बड़े विस्तार के साथ वह प्रेम का इतिहास उसके समक्ष प्रस्तुत करता है । वह कहता है कि उन दोनो का यह प्रेम चिरन्तन और शाश्वत है—उसमे उसकी प्रीति और उसके (विरह जनित) दुख का सम्बन्ध उसी क्षण से है जिस क्षण से विधाता ने उसके प्राणो के सष्टि की वस्तुत उसके प्रीति के नीर स उसकी मत्तिका (शरीर निर्माण के तत्वो) को सानकर ही उसके शरीर की रचना हुई है ।

कहै कुवर सुनु प्रेम विचारी । तोहि मोहि प्रीति पु बविधि सारी ।
एहि जग जीवन मोहि तोहि लावा । मैं जिउ द तोर दुक्ख बेसाहा ।
मैं न आजु तोरे दुक्ख दुखारी । तोरे दुख सेंउ मोहि आदि बिहारी ।
जेहि दिन सिरेउ आंस विधि मोरा । तेहि दिन मोहि दरसिउ दुख तोरा ।
वर कामिनि तोहि प्रीति के नीरू । मोहि माटी मा सानि सरीरू ।

पु व भिन्न सेउ जानहुँ तुम्ही प्रीति के नीर ।
माहि माटी विधि सानिके तो यह सिरेउ सरीर ॥[1]

मझन के अनुसार आदि घट (शरीर) मे जब प्राण भी नही आया था, तभी प्रेमिका के विरह दुख का दर्शन विधाता ने प्रेमी को करा दिया था, इसी कारण यह विरह दुख प्रेमी के लिए उसके प्राणो से भी अधिक प्रिय है और इस दुख पर वह अपने सहस्रा सुखो को वारने के लिए प्रस्तुत रहता है । उसके लिए इस दुख के क्षण मे जो आनन्द है वह चतुर्युग के सुखो मे भी उसे प्राप्य नही ।

'मैं सभ तजि सकरेउ दुख तोरा । मार जिउतोर तोर जिउ मोरा ।
प्रान आदिघट होत न आवा । विधि तार दुख मोरहि तव दरसावा ।
जौरे विकल्पि कहो मैं तोही । तोर दुख अधिक देवविधि मोही ।
मैं सह दुख केरे बलिहारी । सहस सुक्ख एहि दुख पर वारी ।
कौनि जीभि बक्तौं दुख दाता । दुख के रूप सुखनिधि के दाता ।

१ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ९४ ।

एक निमित्त दुख कह नहिं पूज चारिउ युग क सवाद ।
कौन कौन सुख वेरसव तेहि दुख के परसाद ॥'[1]

उसके अनुसार इस विरह दुख न मनुष्य की सष्टि के आदि ही में अपना ग्रास बनाया था जीव ने उसी समय से अपन को जीव करके जाना जिस दिन वह दुख सष्टि म समाया इसलिए इस दुख पर प्रेमी दोनो जगत्—इह लोक और परलोक—क समस्त सुखो को निसार करने को तयार रहता है क्योकि यही दुख वह अमत है जिसन उसे अमरत्व प्रदान किया है प्रेमिका के इसी विरह दुख क कारण प्रेमी का ससार म जन्म ग्रहण करना सफल होता है—

दुख मानुस कर आदि गरा सा । ब्रह्म कवल मह दख करवासा ।
जेहिदिन तोहि दुख सिम्टि समाना । तहिदिन ते जिउ क जिउ जानाँ ।
मोहि न आजु उपजेउ दुख तोरा । तोर दुख आदि सघाती मोरा ।
अब लै वहो दुक्ख कै कावरि । दुइ जग देउ सुक्ख नेउ छावरि ।
मैं आपन द तार दुख जिया । मरिक अब सो अमत पिया ।
तोर दुक्ख मधुमालति सुखदा एक ससार ।
जेहि जिय मोहिं तोर दुख उपजा धनि सो जग औतार ॥[2]

मझन के अनुसार प्रम इसी दुख पर लध होकर उसका साथी बना वह मानव मानस म इसीलिए पदार्पण किया कि उसम दुख का निवास था—

'सुनिउ जाहि दिन सिरि उपाई । प्रीति पेखा विहउ उडाई ।
तीनिहु लोक ढढि क आवा । आयु जोग कहु ठाउ न पावा ।
तब फिरि मोहि पसेउ आई । रहउ लोभाइ न गयउ उडाई ।
तीनि भुवन तब पूछो बाता । कहु तुइवस मानुस घट राता ।
कहेसि दुक्ख मानुस कर आसा । जहाँ दुक्ख तह मार नेवासा ।
जेहि ठा दुख होइ जग भीतर प्रीति होइ बस ताहि ।
प्रीति बात का जान जेहि सरीर दुख नाहि ॥[3]

मझन कहत हैं कि इस प्रेम का रहस्य यह है कि प्रेमी और प्रमिका आदि में एक साथ ही होते हैं । इतना ही नहीं, वे वस्तुत एक होते हैं और तदन

---

१ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ९८ मित्र प्रकाशन प्रा० लि० इलाहाबाद (१९६१) ।
२ वही, पृ० ९६ ।
३ वही, पृ० ९७

न्तर दिया हो जाते हैं। जैसे एक ही जल से दो मिटिटयाँ सानी गयी हो अथवा एक ही जल दो प्रणालियो म प्रवाहित होने लगा हो, अथवा एक ही दीपक दो कक्षो मे प्रकाश देने लगा हो, अथवा एक ही जीव दो शरीरो मे सचरित हुआ हो, अथवा एक ही अग्नि दो स्थानो पर प्रज्वलित कर दी गयी हो, अथवा एक ही प्रासाद के दो द्वार निर्मित किय गय हो--

'त मैं दुवौ सदा सघ बासी । औ सतत एक नेह नेवासी ।
औ मैं तुइ दुइ एक सरीरा । दुइ माटी सानी एक नीरा ।
एक दारी दुइ बहै पनारी । एक दिया दुइ घर उजियारी ।
एक जीव दुइ घट सचारा । एक अगिनि दुइ ठाएँ बारा ।
तेके हम दुइ क औतारे । एक मन्दिल दुइ किए दुवारे ।
एक जोति रूप पुनि एक एव परान एक देह ।
आपुहि आपु जो देइ कोइ चाहै तेहि कर कौन सनेह ।।'[1]

मझन प्रेमी और प्रेमिका को एक-दूसरे स सवदा अविच्छेद्य बताते है—

"त जो समुद लहरि मैं तोरी । तैं रवि मैं जग किरनि अजोरी ।
मोहि आपुहि जनि जानु निरारा । मैं सरीर तुइ प्रान पियारा ।
मोहि तोहि को पार वेगराई । एक जोति दुइ भाउ देखाई ।
सम गियान चखु देखेउ हेरी । हम तुम्ह दुहुँ परिच कब केरी ।
अजहु मोहि न चीन्हेसि बारी । सबरि देखु चित आदि चिन्हारी ।
असझा फाद पेय कर अहा जोदुइ जिय केर ।
होत आपु मह परिवेसइ नर घर जिउ फेरि ।।"[2]

फलत मझन का कहना है कि जब प्रेमी को प्रेमिका का साक्षात्कार हो जाता है, समस्त सृष्टि उसे उसी स व्याप्त दिखाई देती है । तब प्रेमिका का रूप उसके लिए रूप मात्र नही उस परम रूप का केन्द्र बिन्दु हो जाता है जो समस्त सृष्टि म व्याप्त है, उस प्रेमिका के रूप के माध्यम से वह उस दिव्य रूप का साक्षात्कार करता है जो शक्ति और शिव है, जो त्रिभुवन का महा जीव है, जो नानात्व म अपना विकास करके त्रिभुवन मे व्याप्त हुआ है, और उसका भोग कर रहा है--

अब लहि बिनु जिय जीवन सारा । आजु देखि ताहि जीउ सभारा ।
देखत खिन पहिचाना तोही । एहै रूप जेइ छन्दरा मोही ।
इहै रूप तब अहेउ छपाना । इहै रूप अब सिस्टि समाना ।

१ मधुमालती स० डॉ० मानाप्रसाद गुप्त पृ० ९८–९९
२ वही पृ० ९९

इहै रूप सकती औ सीऊ। इहै रूप त्रिभुवन कर जीऊ।
इहै रूप परगट बहु भेसा। इहै रूप जगराक नरेसा।
इहै रूप त्रिभुवन जग वेरसैं महि पयाल आगास
सोइ रूप परगट मैं देखा दुव मार्गे परगास ॥[1]

मझन के अनुसार प्रेमी को फिर यह प्रेमिका रूप ही अपन रूपमात्र की इयत्ता का दशन कराता है—

"इहै रूप परगट बहु रूपा। इहै रूप बहु भाउ अनूपा।
इहै रूप सब नन्ह जोती। इहै रूप सम सायर मोती।
इहै रूप सम फलन्ह वासा। इहै रूप रम भवर वेरासा।
इहै रूप ससिहर औरूरा। इहै रूप जगपूरि अपूरा।
इहै रूप अत आदि निदाना। इहै रूप धरि घर सोधियाना।
इहै रूप जलधर औ महिअर भाउ अनेग देखाउ।
आपु गवाइ जोरे कोइ देख सो किछु देखै पाउ ॥[2]

कहना नही होगा कि प्रेम का इतना विशद निरूपण हिंदी सूफी साहित्य म अन्यत्र नही मिलता है।

पद्मावत एक प्रेम काव्य है। जायसी ने भी लौकिक प्रेम के ब्याज मे पार लौकिक प्रेम का वणन किया है।

जायसी अपनी प्रेम साधना के माध्यम से निराकार प्रभु की आरती उतारते हुए अपना सवस्व उसी म निमज्जित कर देते हैं। पद्मावत मे जायसी ने प्रेममाग उसका महत्व प्रेमगरिमा, उसका सौंदय उस पथ की बाधा का स्थान-स्थान पर अति रमणीय वणन किया है। जिसका हृदय प्रेम बाणो से पूणरूपेण विद्ध है वही इसके मम को जान सकता है—

प्रेम घाव दुख जान न कोई।
जेहि लाग जान प सोई ॥[3]"

मसूर ने उचित ही कहा था, ईश्वर से मिलन तभी सभव है जबकि हम कष्टो के बीच से होकर गुजरें।[4] प्रेम की व्यवस्था मत्यु से भी कठिन है

१ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० ९९
२ वही, प० १००
३ जायसी ग्रन्थवली स० रामचन्द्र शुक्ल (ना० प्र० स० काशी), पृष्ठ ४९
4 A M A Shushtery, Outline of Islamic Culture, P 350

'कठिन मरन तै प्रेम व्यवस्था'। क्रातिदर्शी कबीरदास पर भी सूफियो के प्रेमभाव का पूर्ण रूपेण प्रभाव पडा है। उनके प्रेम के आदर्श शूर हैं। उनके अनुसार प्रेम पथ पर चलना असिधारा पर चलना है। यह कोई खाला के घर का पथ नही है जब जी मे आया चल दिये। इसमे प्रवेश प्राप्त्यर्थ शीश (अहभाव) को समर्पित करना पडता है--

'सीस उतारे भुइ धर तापर राख पाँव
दास कबीरा यौ कहै ऐसा होय त आव।।'
'सीस उतारे भुई धरै सो पठे घर माहि।'

जायसी न भी प्रेमपथ पर चलने की बात को कुछ इसी प्रकार कहा है

"ज्ञान दिस्टि सो जाय पहूँचा। पेम अदिस्ट गगन ते ऊँचा।
धुव ते ऊँच प्रेम धुव ऊआ। सिर दइ पाँव देइ सो छूआ ॥"[१]

प्रेम को खाला का सदन समझने वालो को कबीर ने सावधान किया था। जायसी ने भी कहा है कि वहाँ पहुँचने के लिए शिर काट कर उस पर पैर रखना पडेगा'। 'करब पिरीत कठिन है काजा प्रेम के पर्वत पर वही चढ सकता है, जो शिर (अभिमान या अहभाव) देकर चढना चाहे। उस प्रेमपथ पर काम, क्रोध आदि बटमारी करते हैं। वह प्रेम पीर 'प्रबोध' मे प्रवर्द्धित होता है।

"उपजी प्रेम पीर जेहि आइ।
परबोधत होई अधिक सो आई ॥"[२]

अल फरावी का मत है कि ईश्वर स्वयमेव प्रेम है। सृष्टि रचना का मूल प्रेम है। सृष्टि की इकाइयाँ प्रेम के सहारे प्रेम के महास्रोत मे जो पूर्ण और सर्वोत्तम हैं निमज्जित हो जाने के लिए पूर्णरूपेण जुडी हुई हैं।[3]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूफी साधना में प्रेम का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। प्रेम ही कर्म है और प्रेम ही धर्म है। प्रेम ही पन्थ है और परमात्मा भी प्रेममय ही है। इसी प्रेम से हिन्दी सूफी काव्य पोषित एव सम्वर्द्धित है। हिन्दी सूफी काव्य की प्रत्येक कथा का मूलाधार प्रेम ही है। इसका बीज और अत प्रेम की ही विजय है। फारसी के सभी कवियो न अपने काव्य मे प्रेम को अधिक महत्व प्रदान किया है।

१ जायसी ग्रन्थावली स० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ५०
२ वही, प० ७१
3 A. M. A. Shushtery, Outline of Islamic Cultur, P. 211

मानो प्रेम के अतिरिक्त वे कुछ जानते ही नहीं हैं। प्रमाणस्वरूप पूर्वोल्लिखित रूमी, जामी, अत्त गज्जाली, अत्तारादि के उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। जायसी ने भी पद्मावत में लिखा है—

मानुष पेम भयउ बकुठी। नाहित काह छारि भरि मूठी।
विक्रम धसा प्रेम के बारा। सपनावति कह गयउ पतारा।
मधूमाछ मुगधावति लागा। गगनपूर होइगा बरागा॥"[1]

जायसी ने 'पद्मावत' में 'प्रमपीर' की विशद और प्राजल अभिव्यजना की है।

[1] जायसी ग्रन्थावली स० आ० रामचन्द्र शुक्ल पृ० ३

२ | जायसी की प्रेम-पद्धति तात्त्विक-मीमासा

(क) जायसी का प्रेमादश

प्रेम मानव जीवन की दिव्यतम विभूति है। मानवीय चेतना के स्फुरण के साथ ही प्रेम का आविर्भाव मा य है। सूफी साधको ने प्रेम को ईश्वर का रूप स्वीकार किया है। जायसी 'प्रेम' के मर्मी कवि हैं। उ होने प्रेम का अत्य त ऊँचा आदश प्रस्तुत किया है। पद्मावत महाकाव्य म अनेक स्थलो पर उ होने प्रेम के आद को मूत करन की चेष्टा की है। प्रेम गगन से ऊँचा है। प्रेम का ध्रुव आका स्थिति ध्रुव से भी ऊपर-उदय होता है।[1] जो दु ख और वियोग सहने के लिए तत्पर होता है, ि र दने के लिए सन्नद्ध होता है वही प्रेम का अधिकारी है। इस पथ पर योगी, यती तपस्वी और स यासी ही चल सकते हैं।[2] प्रेम को विधि ने कठिन पहाड जसा निर्मित किया है। जो सिर देकर चढ़ना चाहता है, वही चढ सकता है। प्रेम-पथ पर चलना ूली पर चलने के समान है। इस पर कोई पक्का चोर या मसूर ही चढ सकता है।[3] प्रेम के फदे मे एकबार जो जाता है वह इससे मुक्त नही हो

---

१ 'ज्ञान दिष्टि सो जाइ पहूँचा। पेम अदिस्ट गगन तें ऊचा॥
धुव ते ऊँच पेम धुव ऊआ। सिर देइ पाव देइ सो छूआ॥
—जायसी ग्र थावली स० आ० रामच द्र शुक्ल, पृ० ५०।

२ 'ओहि पथ जाइ जो होई उ ासी। जोगी, जती तपी स यासी॥
—वही, पृ० ५०।

३ "प्रेम पहार कठिन विधि गढ़ा। सो प चढ़ जो सिर सौं चढ़ा।
पथ सूरि कै उठा अकूरु। चोर चढ़ की चढ़ मसूरु॥
—वही, पृ० ५१।

पाता।[1] जो सच्चे मन और दृढ़ निश्चय के साथ प्रेम का खेल खेलता है वह दोनो लोको को सफल बना लेता है। प्रेम का लघु दुख के भीतर सन्निहित है। जो इसे चख लेता है, वह अमर हो जाता है। जो प्रेम पथ पर अग्रसर नही होता उसका पथ्वी पर आना व्यथ है।[2] जो सच्चा प्रेम करता है, उसके लिए सोना जागना सब बराबर हो जाता है।[3] वह सवत्र अपने प्रिय को ही देखता है। मनुष्य प्रेम' के बल पर स्वर्गीय बन जाता है। जब हृदय म प्रेम का दीप जलता है तब उससे उत्पन्न ज्योति से हृदय निमल हो जाता है। जो माग असूफ-अधेरे से भरा होता है उसम प्रकाश हो जाता है और वह जाना बूझा हो जाता है।[4] सच्चा प्रम वही है जो प्राणो के साथ जाता है। प्रेम का भार उठाने पर मन म सोच नही होता चाह वह माग मे भला हो या बुरा। प्रेम पवत का भार जब उठा लिया जाता है तो वह किसी भी प्रकार छूटता नही है।[5] वह तो हृदय स बधा रहता है। प्रेम पवत के सदश है जिसकी पीठ पर इसका भार बध जाता है वह फिर उससे कभी मुक्त नही हो पाता। इस प्रेम से अनुप्राणित साधक को प्रेम के अतिरिक्त ससार म कुछ भी मधुर नही लगता है। रत्नसेन तोते रूपी गुरु के मुख से पद्मावती का रूप वणन सुनकर यह अनुभव करने लगता है कि तीन लाक और चौदह खड

---

१ पेम फाद जो परा न छूटा। जीउ दी ह प फाद न टूटा।।'
—जायसी ग्रन्थावली स० डा० रामचन्द्र शुक्ल प० ३९।

२ भलेहि पेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइ खेला।
दुख भीतर जो पेम मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा।।
जो नहिं सीस पेम पथ लावा। सो प्रिथिमी मह काहे क आवा?"
—वही, प० ४०।

३ 'जेहि के हिये पेम रग जामा। का तेहि भूख नीद बिसरामा।।"
—वही प० ५८।

४ लँसा हिये प्रेम कर दीया। उठी जोति भा निरमल हीया।
मारग हुत अधियार जो सूझा। भा अजोर, सब जाना बूझा।
—वही पृ० ७।

५ 'का सो प्रीतितन माह बिलाई? सोइ प्रीति जिउ साथ जो जाई।
प्रीति भार ल हियै न सोचू। ओहि पथ भल होइ कि पोचू।।
प्रीति-पहार भार जो काधा। सो कस छुट, लाइ जिउ बाधा।।
—वही, पृ० २२।

में प्रेम के अतिरिक्त और कुछ सुदर नही है।[1] आदश एव पवित्र प्रेम साधना बडी कठिन है। इसमे आत्म समपण करने से ही आनन्द की प्राप्ति होती है। वास्तव म प्रेम भाव अनिवचनीय है। इसके माधुय को वही जानता है जिसने उस माग का अनुसरण किया है। जिसने यह माग नही देखा, वह इसके वशिष्ट्य को नही जानता।[2] जो प्रेम सुधा से सिक्त वचन सुनता है, वह मदोन्मत्त होकर चक्कर खाकर गिर जाता है।[3] प्रेम के घाव का दुख कोई नहीं जानता। जिसे घाव लगता है वही जानता है। वह प्रम के अपार समुद्र म गिर जाता है और लहर पर लहर आने से बेसुध हो जाता है। उसका विरह उसे भवर की तरह घुमाता है। जिसके कारण क्षण क्षण मे उसका जीव हिलोरे लेता है फिर क्षण भर म बौरा कर विश्वास छोडने लगता है। उसका मुख क्षण म श्वेत और क्षण मे पीला हो जाता है। क्षण मे उसे चेत होता है और क्षण म अचेत हो जाता है। प्रेम की स्थिति मरने स भी कठिन होती है क्योकि उसम न प्राण जीता है और न ही मत्यु होती है।[4] पेम के पथ में जाने वाला दिन और घडी नहीं देखता। जब ज्ञानयुक्त होता है तभी उस माग की ओर देखने लगता है। जो प्रेम म पगा होता है उसका शरीर मास रहित अत्यन्त क्षीण हो जाता है। उसके शरीर मे न रक्त हाता है, और न नेत्रो में आसू। पडित भी प्रेम विह्वल होकर भूला रहता है। प्राण लेते

---

१ 'तीनि लोक चौदह खण्ड, सब परे मोहि सूझि।
पेय छाडि नहिं लोन किछु, जो देखा मन बूझि॥'
जा० ग्र०, प० ३९।

२ वही, पृ० ४०।

३ 'भरे प्रेम रस बोल बोला। सुनै सो माति घूमि के डोला॥
—वही, पृ० ४४।

४ 'पेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लगि जान प होई।
परा सो पेम समुद्र अपारा। लहरहि लहर होइ बिसभारा॥
विरह भवर होइ भावरि देइ। खिन खिन जीव हिलोरहि तोई॥
खिनहि निसास बूडि जिउ जाई। खिनहि उठ निसरै बौराई॥
खिनहि पति खिन होइ मुख सेता। खिनहि चेत खिन होइ अचेता॥
कठिन मरन तें पेम व्यवस्था। न जिअ जिवन न दसई अवस्था॥
—स० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल पद्मावत
पृ० १३४–३५।

समय मृत्यु नहीं पूछती ।[1] जिसमें प्रेम होता है उसे प्राणों का मोह नहीं होता । जो पहले सिर देकर इस मार्ग में पैर रखता है, वह पहले ही मर जाता है । मृत्यु उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती है ।[2] जिसने प्रेम का समुद्र देखा है वह इस समुद्र को बूँद की तरह समझता है ।[3] प्रेम का समुद्र अगाध है । वहाँ वार-पार नहीं है, न थाह है जो इस समुद्र में पड़ता है वह जीव को गवा कर हंस बन कर पार पहुँचता है ।[4] वे मनुष्य धन्य हैं जो प्रेम के मार्ग में चलते हैं । उन्होंने ही वह उत्तम स्वर्ग प्राप्त किया है । जहाँ मृत्यु नहीं और सदा सुख का निवास है । जो प्रेम के मार्ग में पार पहुँच जाता है, वह पुन लौटकर इस मिट्टी में नहीं मिलता है ।[5] दधि का सागर देखते ही मन दग्ध हो सकता है परन्तु जो प्रेम का लुभाया हुआ है वह दाह सह लेता है । वह जीव धन्य है जो प्रेम से दग्ध हुआ है । जिसके हृदय में प्रेम है उसके लिए आग चंदन की भाँति शीतल होता है पर जो प्रेमरहित है वह आग से भयभीत होकर भागता है । जो कोई प्रेम की आग में जलता है उसका दुख व्यर्थ नहीं

---

१ पेम पंथ दिन घरी न देखा । तब देखे जब होइ सरेखा ।
जेहितन पेम कहाँ तेहि मासू । कया न रकत नैन नहिं आसू ॥
पंडित भूल न जान चालू । जीउ लेत दिन पूछ न कालू ॥'
—जा० ग्रंथावली पृ० ५३ ।

२ पै जेहि पेम कहा तेहि जीऊ
जो पहिले सिर दै पगु धरई । मूए करे मीचु का करई ॥
—वही पृ० ५९ ।

३ "औ जेइ समुद पेम कर देखा । तेहि एहि समुद बूँद करि लेखा ॥'
—वही, पृ० ६० ।

४ पेम समुद अस अवगाहा । जहाँ न वार पार नहिं थाहा ।
जौं वह समुद काहु एहि परे । जौं अवगाहा हंस होइ तिरै ॥
—डा० वासुदेव शरण अग्रवाल 'पदमावत' पृ० १६३ ।

५ चढ़े बेगि और बोहित पेले । धनि ओइ पुरुष पेम पथ खेले ॥
तिन्ह पावा उत्तिम कबिलासू । जहाँ न मीचु सदा सुख वासू ॥
पेम पथ जो पहुँचे पारा । बहुरि न आइ मिल एहि छारा ॥"
—पदमावत डा० वा० श० अग्रवाल
पृ० १६६–६७ ।

जाता।[1] प्रेम मद से दीपक प्रज्ज्वलित होता है। जब तक पतिगा बन कर उस दीपक पर जल न जाय तब तक प्रेम मद का आस्वादन नही किया जा सकता[2] मनुष्य प्रेम के द्वारा स्वर्ग के योग्य बनता है नही तो उसमे है ही क्या ? केवल एक मुट्ठी राख है। प्रेम म ही विरह और रस दोनो हैं जसे मोम के छत्ते मे शहद का अमृत और वर दोनो रहते हैं। सत्यहीन व्यक्ति दौड धूप कर मर भी जाय तो क्या ? पर जो सत्य स्वरूप का व्यवहार करता है उसे बडे ही लाभ मिलता है।[3] मछली पृथ्वी पर जल मे निवास करती है। आम वृक्ष पर आकाश मे फलता है पर दोनो म सच्ची प्रीति है तो अ त तोगत्वा दोनो एक साथ मिल जाते हैं। ठीक इसी प्रकार प्रेम के क्षेत्र मे मानव भी प्रेम की सच्चाई होने पर अ तत मिल जाते हैं।[4] प्रेम की चिनगारी का नाम सुनकर पृथ्वी और आकाश भी डरते हैं। धन्य है वह हृदय जिसमे यह अग्नि समाहित रहती है।[5] वास्तव म प्रेम के रहस्य को वह नही जान सकता है जो उसके लिए आत्मबलिदान नही करता । इस प्रेम का पथ उलटा है। जो बडी कामनाए रखता है वह पाताल म गिरता है किन्तु जो उसमे प्रवेश

---

१ 'दधि समुन्द देखत मन उहा। पेम कलबुध दगध पै सहा॥
पेम सौं दाधा धनि वह जीऊ। दही माँहि मथि काढै घीऊ॥
+ + +
जेहि जिय पेम चदन तेहि आगी। पेम बिहून फिरहि उरि भागी।
पेम कि आगि जर जो कोई। ताकर दुख न अबिरथा होई॥"
—वही पृ० १७२–७३।

२ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५१।

३ 'मानुस पेम भखउ बकुठी। नाहित काह छार एक मूठी॥
+ + +
निसत धाइ केय जौ मर तौ काहा। सत जौ कर बसइ होइ लाहा॥
—पदमावत वही, पृ० १८९।

४ बस मीन जल धरती अबा बिरिछ अकास।
जौं रे पिरीति दुहन मह अत होहिं एक पास॥'
—पद्मावत वा० श० अग्रवाल, पृ० २०६।

५ 'चिनगी प्रेम के सुनि महि गगन डराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया तह अस अगिनि समाइ॥'
—जायसी ग्रथावली पृ० ८८

कर आत्म बलिदान करता है और निष्काम साधना करता है, वह सफल होता है।[1] जिसके हृदय में प्रेम का अंकुर होता है, वह पानी की भाँति तरल और शीतल रहता है। वह जिस रंग मे मिलता है उसी रंग का हो जाता है। जो प्रेम को जीत लेता है वह सिद्धों की भाँति तप करके मरता नहीं है।[2] जो प्रेम के पैरो पर अपना सिर दे देता है वह प्रीति को निबाहने के लिए सन्नद्ध रहता।[3] प्रेम सुरा जिसके हृदय में होती है उसके लिए साधारण महुआ की मदिरा का कोई मूल्य नहीं होता है। इस प्रेम सुरा का पान करने पर जीवन मरण का भय नहीं रहता है।[4] जो व्यक्ति प्रेम की बेल में उलझ जाता है तो वह उलझन के बाद मर कर भी नहीं छूटता है। प्रीति की बेल शरीर को दग्ध किया करती है। उसमें जब पल्लव फूलते हैं तब सुखानुभव होता है पर उसके विकास को प्राप्त हो जाने पर दुख बन जाता है। प्रीति की बेल के साथ ही अपार दुख भी उत्पन्न होता है जिसकी ज्वाला स्वर्ग से पाताल तक जलती है। प्रीति की अमर बेल दिनानुदिन बढ़ती ही रहती है। कभी भी क्षीण नहीं होती। प्रीति की अमरबेल एकाकी ही चढ़कर छाती है फिर दूसरी बेल वहाँ नहीं फलने पाती है। जब कोई प्रीति की बेल मे उलझता है तब उसकी छांह में उसे सुखानुभव होता है।[5] जो एक बार प्रेम सुरा का पान कर लेता है उसके हृदय मे मरने जीने का डर नहीं रहता है। वह पीता हुआ

---

१ उलटा पन्थ पेम के वारा। चढ सरग, जो पर पतारा ॥

—वही पृ० ९८।

२ 'जहि जिय पेम पानि भा सोई। जेहि रंग मिलै तेहि रंग होई।
जोप जाइ पेम सिउ जूझा। कत घपि मरहिं सिद्ध जिन्ह बूझा'।

—पद्मावत वा० श० अग्रवाल, पृ० २७८।

३ वही, पृ० २७८।

४ 'प्रेम सुरा जेहि के हिय माहाँ। कित बठे महुआ के छाहा।'

—जायसी ग्रन्थावली पृ० ६५।

५ "प्रीति वेलि जनि अरुझ कोई। अरुझें मुए न छूटै सोई ॥
प्रीति वेलि ऐसें तनु डाढा। पलुहत सुख बाढत दुख बाढा ॥
प्रीति वेलि सग विरह अपारा। सरग पतार जर तेहि झारा ॥
प्रीति वेलि कैइ अम्मर बोई। दिन दिन बाढ खीन न होई ॥
प्रीति अकेलि वेलि चढ़ि छावा। दोसरि वेलि न पसर पावा ॥

—पद्मावत वा० श० अग्रवाल पृ० २९०।

अघाता नहीं है । वह बारम्बार पीने की ईहा व्यक्त करता है । बार बार बेसुध हो जाता है । जिसे एकबार प्रेम मधु का लाभ हो जाता है, वह सवस्व वहा देता है और कहता है "भले हो सवस्व चला जाय पीना न छूटे ।' वह अहर्निश प्रेम रस मे डूबा रहता है, न लाभ देखता है और न हानि । जब प्रात काल होता है तब उसका शरीर हरा भरा हो जाता है और पीने के लिए नया उत्साह आ जाता है । मानो नशा उतरने पर खुमारी की दशा म उसे शीतल जल मिल गया हो ।[1] इस प्रेम का माधुय इसका विरह ही है । विरह प्रेम का चरम सौन्दय है । प्रेम मे विरह का रस होने के कारण उसम विचित्र मादकता रहती है ।[2] विरह वास्तव म प्रेम का मापदड है जिसका प्रेम जितना तीव्रतम होता है, उसकी विरहानुभूति उतनी ही गहरी होती है । 'कठिन प्रेम विरहा दुख भारी' से यह स्पष्ट है । प्रेम का मूल त्याग है । जो प्रम माग मे प्रवत्त होता है उसे प्राणो की बलि तक चढानी पडती है । वास्तव म प्रेम के रहस्य को वह नही जान सकता जो उसके लिए आत्म बलिदान नही कराता ।[4] जब तक प्रेमी पिय से पूण एक्य लाभ कर भृग की भांति तद्रूप नही हो जाता और अपने अस्तित्व को प्रम पात्र म विलय नही कर देता तब तक उसक हृदय स सासारिक भय नही निकलते हैं ।[5] निश्चय ही प्रेम का पीर म जागरूकता होती है । प्रेम की कसौटी पर कस जाने पर मानव कचन के सदृश खरा हो जाता है ।[6]

(ख) प्रेमोदय का आधार

पुरुष और स्त्री के बीच प्रम का उदय एक मानसिक प्रक्रिया है । यह प्रेमोदय क्या और किस प्रकार होता है ? यह निर्धारित करना कठिन है । प्रेमोदय का कारण बहुत कुछ वयक्तिक होता है । प्रेम का आधार सौन्दय है किन्तु सौन्दय बहुत कुछ द्रष्टा का वयक्तिक रुचि से सम्बद्ध है । फिर भी प्रमाख्यानो में इसके उदय के जो कारण और आधार दिये गये हैं, उनका विवेचन किसी निश्चित परिणाम की ओर ले जा सकता है ।

---

१ डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल पद्मावत पृ० ३८५ ।
२ आ० रामचन्द्र शुक्ल जायसी-ग्रन्थावली पृ० ७१ ।
३ वही, पृ० ५८
४ वही, पृ० ७३
५ 'ना वह करा भृग क होई । ना वह आपु मरा जिउ खोई ।।"
—वही, पृ० ९९ ।
६ वही, पृ० ९९ ।

प्रम (रति) भाव की तीन अवस्थाएँ होती हैं, उदय साधनावस्था, और सिद्धि। आलम्बन के प्रथम परिचय रूप गुण श्रवण चित्र दशन और साहचय स रतिभाव का उदय हाता है। उसे पाने, चिरस्थायी साहचय स्थापित करने का प्रयत्न और वियोग साधनावस्था है। मिलन और सम्भोग रति की सिद्धावस्था है। उदयावस्था को सम्भवत साधनावस्था मे ही समाविष्ट कर लिया गया है। पर सूफी काव्य म प्रेम की उदयावस्था का जिस विस्तार से वणन हुआ है, उसे जो गम्भीरता और गरिमा दी गयी है उसे देखकर उदयावस्था को पथक मान लेना पडता है।

सूफी काव्य मे प्रेम का उदय साक्षात परिचय, चित्रदशन, स्वप्न दशन, रूप गुण श्रवण और स्वत, अकारण या सरकार प्रेरणा से भी होता है। मधु मालती' (मझन)[1] मे साक्षात दशन और परिचय तथा पद्मावत (जायसी)[2] मे गुण श्रवण से प्रेम का उदय होना है। पद्मावत' म नायिका पद्मावती के हृदय म स्वत ही रतिभाव जागृत हो जाता है और वियोग में व्याकुल होन लगती है। इस अकारण या स्वत रतिभावोदय की अस्वाभाविक्ता का निराकरण सूफी साहित्य मे है। प्रिय युग-युग से, जन्म जन्मान्तर स प्रियतमा के विरह मे छट पटाता रहता है। प्रियतमा भी अपने प्रिय के लिए व्याकुल है। जायसी के पास इसका समाधान कोई है तो वह रत्नसन के योग का अलक्ष्य प्रभाव--

'पद्मावति तेहि लोग सजागा। परी प्रेम बस गहे वियोगा'[3]

स्वप्न दशन स प्रेमोदय का समाधान भी परमात्मा और आत्मा के अनादि अनन्त प्रम की स्वीकृति म है। चित्र दशन या गुण श्रवण द्वारा जो प्रम का उदय हाता है, वह लोक व्यवहार और अनुभव सिद्ध है। ऐसा मानना कि केवल साहचय से ही प्रेम का उदय और विकास हाता है, युक्तिसगत नही प्रतीत होता है। साहचय से प्रेम के दढ होने की सम्भावना की जा सकती है। उद्वाह चर्चा चलने पर पुरोहित ही नही प्रत्युत माता पिता और मध्यस्थ लडके के रूप गुण का मुक्त कठ से प्रशसा करते और एक दूसरे को परस्पर आकर्षित करते हैं। इसका प्रयोग ही एक-दूसरे म प्रेमाकुर उगाना है।

१ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० ३४-४२

२ "सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानो लहर सुरज क आई॥'
—जायसी-ग्रन्थावली, प० ४९

३ वही पृ० ७३

हरिवंश पुराण[1] म शुचि मुखी नाम्नी हँसी के द्वारा प्रद्युम्न जी के रूप-गुण का श्रवण करके प्रभावती उनको पति रूप मे प्राप्त करने के लिए कामना करने लगती है।[2] यहाँ पर भी रूप गुण श्रवण से ही प्रेमोदय हुआ है।

शकुन्तला अनुपमा सुन्दरी है।[3] राजा उसके सौन्दय को देखकर मन्त्र मुग्ध हो जाता है।[4] उसका सौन्दय नैसर्गिक है। उसके अंगो म असाधारण लावण्य है।[5] उसके यौवन के चिन्ह प्रकट हो रहे हैं।[6] इस प्रकार कालीदास के शकुन्तला और दुष्यन्त के मध्य प्रम का उदय प्रत्यक्ष दर्शन से ही हुआ है।

आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने प्रेम चार प्रकार का माना है[7]—

(१) विवाह के बाद जीवन-संघष मे जिसका उत्कष दिखाया जाता है,

---

१ "त्रलोक्ये यस्य रूपेण सदशो न कुलेन वा।
गुणर्वा चारु सर्वाङ्ग शौर्येणाप्यति वा शुभे॥
देवेषु देव सुश्रोणि दानवेषु च दानव।
मानुषेष्वपि धर्मात्मा मनुष्य स महाबल॥
× × ×
यान्यागुणान्पृथु श्रोणि मनसा कल्पयिष्यसि।
एष्टान्यास्त्रिषु लोकेषु प्रद्युम्नो सव एव ते॥
—हरिवंशपुराण, विष्णुपव, अ० ९४, श्लोक २०-२६, पंडित पुस्तकालय, काशी।

२ 'पद्युम्नस्यादयथा भर्त्ता स मे वष्टि कुलोद्भव।
अरयन्त वैरी दैत्यानामुद्वेजन करो हरि॥
+ + +
हेतु स नास्ति स्यात्तेन यथा मम समागम।
दासी तवाह सख्यहँ कृत्य त्वाच विसजये॥
—वही श्लोक ३४-३७

३ "मानुषीषु कथ वा स्यादस्य रूपस्य सम्भव।
न प्रभातरलं ज्योतिरुदेति वसुधातलात्॥
—अभिज्ञानशाकुन्तलम (प्र० अक), डा० कपिलदेव द्विवेदी, पृ० ७८

४ 'इद किला व्याज मनोहर वपु'—वही, पृ० ४६

५ "अधर किसलय राग"—वही, पृ० ५४

६ "अत्र पयोधर विस्तार पितृ०"—वही, पृ० ४९

७ जायसी ग्रन्थावली, भूमिका। पृ० २७

(२) विवाह के पूर्व, जो जीवन क्षेत्र मे कहीं भेंट होने से उदित हाता है और जिसका परिणाम विवाह होता है

(३) राजप्रसाद,वाटिका जल विहार आदि म जो रग रहस्य के रूप में प्रकट होता है, तथा

(४) गुण-श्रवण चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन आदि के द्वारा जिसका उदय होता है। नायक या नायिका जिसम प्रयत्नवान दिखाय जाते हैं।

तीसरे प्रकार को चाहे तो दूसरे या चौथे प्रकार म समविष्ट किया जा सकता है। वास्तव म तीसरे प्रकार का प्रेम श्रृगार या भोग विलास चित्रण है इसे तो किसी भी प्रम के भीतर समाहित किया जा सकता है।

सूफियो का प्रेम दूसरे और चौथे प्रकार का समन्वित रूप है यहाँ यह बात ध्यातव्य है कि यूसुफ जुलेखा के सिवा सवत्र सूफी काव्य मे स्वकीया प्र म का निरूपण है। युसुफ जुलेखा' म ही परकीया प्रेम की स्थापना की गयी है। जुलेखा ने अपने पति को कभी शारीरिक या मानसिक समपण नही किया–वह पवित्र ही बनी रही। प्रयत्न भी जुलेखा के सिवा सभी काव्यो म नायक का ओर से ही है।[1]

प्रेम की उदयावस्था का उत्कर्ष पूवराग मे होता है। पूवराग तीन रूपो म उदित होते दिखाया गया है। चित्र–दर्शन गुण श्रवण और स्वप्न दर्शन से। स्वप्नदर्शन द्वारा उदभूत पूवराग पहले दोनो प्रकारो की अपेक्षा कम स्वाभाविक है। पहल दोनो प्रकारो को मनोवैज्ञानिक, स्वाभाविक और सम्भाव्य कहा जा सकता है। पूवराग के भी दो पक्ष हैं एक मिलन सुख की त मयता प्रेम की परिपक्वता, चिर साहचय की स्वीकृति समपण आदि और दूसरा विरह। चित्रवली से सुजना और मधुमालती से मनोहर का मिलन होता है। वे परस्पर मुग्ध हो जाते हैं। चिरतन प्रेम को पहचान लते हैं, चिर साहचय का सकल्प करते हैं और इतने प्रेमाकुल हो जाते है–

'प्रेम भाव दुओ जो भरेऊ। परम आनन्द चित्त मे घरेऊ॥

\+ + +

नन सोहागिनि विस वस, अधर अम्रित वासु।
नन कटाच्छ जो मार, विहसि जियाव तासु॥'[2]

---

१ हिन्दी सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल पृ० ५११

२ मधुमालती स० डा० माता प्रसाद गुप्त पृ० ४१

आलम्बन के मुग्धकारी सौन्दर्य रस का एक घूट पीते ही आश्रय सुध-बुध खो बैठता है। भावलीनता और विस्मरण की अतल गहराइयों में निमग्न हो जाता है। देवजानी राज प्रासाद के गवाक्ष से माला पिरोती हुई मानदीप को देखती है। उसके रूप के ध्यान मे वह इतनी निमग्न हो जाती है कि अपनी उंगली को ही फूल के साथ बींध डालती है-उसे पता तक नही चलता। चित्र दर्शन गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन मे भी नायक पर जब प्रेम का नशा सवार हो जाता है। पद्मावती के रूप गुण श्रवण करने पर रत्नसेन की यही अवस्था होती है-

'सुनतहि राजा गा मुरझाई। जानौ लहरि सुरुज कै आई ॥
खिनहि उसास बूडि जिउ जाई। खिनहि उठ निसरै बौराई ॥
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता। खिनहि चेत खिन होइ अचेता ॥'[1]

पूर्वराग के उत्कर्ष और परिपक्व हो जाने के बाद प्रेम का प्रयत्न या साधना पक्ष आता है। अधिकतर नायक राजपाट, धनधरती, सुख ऐश्वर्य को ठुकरा जोगी बन कर निकल पड़ते हैं।[2] प्रेम के प्रयत्न पक्ष को इतना महत्व दिया गया है कि कवलावती मे विवाह हो जाने के बाद नायिका का विछोह हो जाता है और नायक योगी बन कर उसकी खोज करता है।[3] नायक को भयकर प्राकृतिक व्यवधान, बाधाओ और प्रकोपो का सामना करना पड़ता है[3]। दुर्गम वन पर्वत और विकट पथो को वह पार करता है। समुद्री तूफानो का सामना करता है। जगली हाथियो, शेरो और पक्षियो का शिकार होते-होते बचता है। भीषण दैत्यो राक्षसो का वध करके अपनी और अनेक अबलाओ की रक्षा करता है। आक्रान्ताओ अनाचारियो को परास्त करके वह साध्य की ओर अग्रसर होता है। उसके मार्ग की बाधाओ प्रलोभन के रूप मे उसके सामने आती हैं। वह उन्हें ठुकरा कर अपनी प्रेयसी के प्रति अनन्य प्रेम और निष्ठा का परिचय देता है। यही संघर्ष का पक्ष है।

विरह का सूफी काव्य मे अत्यधिक महत्व है। गुरु के द्वारा साधक को परम प्रिय परमात्मा का बोध कराना और उसके हृदय मे विरह की चिनगी

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४९

२ 'चला भुगुति मागै कहॅ साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पद्मावति जेहि कर हिय वियोग ॥'
—वही, पृ० ५३

३ सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल पृ० १९८

जलाना ही ज्ञान विरह जाग्रत करना है'। विरह चिगारी जब सुलग कर अबूझ आग बन जाती है तो साधक विश्व के कण कण को उसी प्रियतम की विरह ज्वाला मे सुलगते हुए पाता है या प्रत्येक पदार्थ को विरह म जलते हुए देखता है, तो उसके हृदय म वही आग धधक उठती है। धरती आकाश उसीके कटाक्ष बाणो स घायल है।' समस्त जगत उसका अधर पीयूष पान करन के लिए बताब है।' उसक कपोलो के तिल पर गगन स्थिर ध्रुव टकटकी लगाये है।' उसके सुषमा पराग पर भौरा बना है कोई सौन्दय दीप शिखा पर पतगा।' देवता तक भी उसके नशील रूप को देखते हुए वेसुध हो जाते है।' विरह ही प्रेम परीक्षा की सफलता की सनद है। विरह तीन क्षत्रो मे क्रियाशील पाया जाता है, आश्रय, आलम्बन और परिवश । विरह के तीक्ष गरल दशन को आश्रय अपने भावाकुल सुकुमार हृदय म धरोहर मानकर पालता है। विरह की अग्नि मे सुलझ कर भी वह उस कलज स सटाय रखता है। अपने हृदय को गलाकर वह खून के आँसू बहाता है। सूफ़ी अपने प्राणो की धूनी जलाता है। वह वेदना का अनुपम साधक होता है

'ननहिं चली रकत क धारा। कथा भीजि भयउ रतनारा।
पुहुमि जो भीजि भयउ सब गेरु। औ रातें तह पखि पखेरु॥
ईगुर भा पहार जो भी जा। प लुहार नहिं रोव पसीजा॥
तहाँ चकोर कोकिला, तिन्ह हिय मया पईठि।
नन रकत भरि आमे तुम फिरि कीन्ह न दीठि॥

१ "गुरु विरह चिनगी जो मला। जो सुलगाइ लइ सो चेला।
—जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५१

२ 'बरुनी का बरनौ इमि बनि। साधे बान जानु दुइ अनी॥
+ + +
उन्ह बान हु अस को न मारा? बेधि रहा सगरा ससारा।
गगन नखत जो जाहिं न गने। वे सब बान ओहि के हुने॥"
—वही, पृ० ४३, दोहा ६

३ वही, पृ० ४४ दोहा ८

४ वही, पृ० ४५ दोहा ११

५ वही, पृ० ८४ दोहा ८

६ वही, पृ० ८३, दोहा १०

७ जायसी ग्रन्थावली पृ० ९८, दोहा १२

कभी प्रेमी सिसक सिसक कर अपनी वहनियाँ स व्यथा की कथा लिखकर भेजता है, कभी हड्डियों की सारगी बनाकर रोम रोम स चीत्कार भरे स्वर अलापता है। कभी शरीर की भस्म बनाकर प्रिय पथ म बिछाता है—

' मसि नना लिखनी वरुनि, रोइ रोइ लिखा अकरथ ।
आखर दहै न कोइ दयुव दी ह परेवा हत्थ ॥'[1]

जब जड चेतन सभी वियोगी की हृदयवेधक दशा देखकर तडप उठते हैं, तो प्रिय पर उसका प्रभाव क्यो न पडेगा। सच्ची साधना से साध्य द्रवित होता ही है। वह भी साधक के विरह मे तडपने लगता है—

जसे कवल सूर के आसा । नीर कण्ठहि परत पियासा ॥
बिसरा भोग सेज सुख बासा । जहाँ भौर सब तहाँ हुलासा ॥
अगर चन्दन सुठि दहै सरीर । औ भा अगिनि कया कर चीर ॥
विरह न आपु समीर मन्द चीर सिर रुख ।
पिउ पिउ करत रातिदिन जस पपिहा मुख सूख ॥'[2]

रत्नसेन के विरह मे पद्मावती जब ऐसी बेहाल हो रही है तभी उसकी विरह पाती ले हीरामन आ जाता है, वह तुर त अकुला कर प्रियतम की कुशल पूछती है—

' मन्द तुम्ह सुआ की न्ह है फेरा । कहहु कुसल अब पीतम केरा ।'[3]

प्रेम की सबस बडी पहचान है, निज पीडा भूल कर प्रियतम की कुशल कामना करते रहना। साधक की मार्मान्तिक वदना, प्रेम पथ में त्याग, कष्ट सहन अडिग धीरता और अत म आस्था ही साध्य के हृदय म मया उत्पन्न करती हैं। यह 'मया' ही साधक (प्रेमी) और साध्य (प्रियतम) का चिरन्तर आध्यात्मिक सम्बन्ध (प्रेम) स्थापित करती है।

निर्गुण कवियो के समान ही सूफियो न भी विरह के प्रतीको का प्रयोग किया है। कहीं विरह को वराग्य[5] कहा गया है, कहीं भवर।[6] ईश्वर विरह मे

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ९६
२ वही, पृ० ९९
३ वही, पृ० ७९
४ सुनि के धनि जारी अस कया। तन मा मयन हिय भई मया ॥
—वही, पृ० ७८
५ वही पृ० ४९
६ वही, पृ० ४९

साधक विरागी, त्यागी, भौतिक सुख विमुख हो जाता है। उसकी दशा भवर में पडे मनुष्य की सी होती है, विरह के समुद्र मे वह कभी डूबता है, कभी उतराता। विरह की आग म जलकर साधक सच्चा सोना बनता है इसीलिए उसे चिंगारी[1] और आग[2] बताया गया है। विरह बाण[3] लग कर प्रेमी छट पटाता है। विरह का घाव खडग से कम पीडा नही पहुँचाता।[4] वियोग वेदना और वेसुधी सप के विष दशन से कम नही है। इसके अतिरिक्त विरह को व्याध[5], हाथी, केहरी[6], राहु[7] आदि प्रतीका द्वारा भी अभि यक्त किया गया है। 'पद्मावत' वियोग खण्ड' मे जो यौवन वणन है वह विरह वणन ही है।[8]

हिन्दी सूफी प्रेम काव्यो म यद्यपि रति का आधिक्य नायक म ही दिखाया गया है पर नायक की विरह साधना प्रेम पथ के अद्वितीय कष्टसहन और उसकी दीनहीन दशा का प्रभाव नायिका पर इतना पडता है कि नायिका म रतिभाव का उदय इतनी तीव्रता, सघनता और आधिक्य के होता है कि दोनो का प्रेम सम कहा जा सकता है।[11] समान प्रम का यह भाव अनादि है–कही प्रत्यक्ष, कही अप्रत्यक्ष। नायक म सौन्दय, शील प्रेम की अन यता के कारण नायिका में जो प्रम उदित और विकसित होता है उससे वह भी रतिभाव की आश्रय बन जाती है और नायक आलम्बन हो जाता है। विरह साधना के उपरान्त दोना का मिलन परिणय के रूप मे होता है। नायिका प्रेम मे इतनी

१ 'सुनि कै धनि जारी अस कया। तन मा मयन हिय भई मया॥
–वही पृ० ७४

२ वही, पृ० ९६

३ जायसी ग्रन्थावली प० ९७–९८

४ वही प० ७४

५ मधुमालती डॉ० माताप्रसाद गुप्त पृ० ४४, ७४

६ जायसी ग्र थावली, पृ० ६४

७ वही।

८ वही।

९ वही, प० ७५

१० वही प० ७४–७५

११ (क) 'काढ़ि प्रान वठी लेइ हाथा। मर तौ मरो जियो एक साथा
–वही, पृ० ११३ (ख) वही, पृ० २९

सराबोर हो जाती है कि हृदय म उसे उपस्थित पाती है-न मिलने पर विलक्षण विवशता अनुभव करती है ।[1] तन मन जीवन साजकर सवस्व समपण करन के लिए प्रस्तुत करती है--

'साजन लेइ पठावा, आयसु जाइ न भेंट ।
तन मन जोवन साजि क, देइ चली लइ भेंट ।।'[2]

मिलन के लिए जात हुए लज्जा, सकोच, अपरिचय, यौवन घम, प्रेम की अनभिज्ञता आदि क कारण उसका हृदय धक धक करने लगता है ।[3]

प्रथम भेंट मे सौंदय के सहसा साक्षात्कार से बेताब हो नायक आनन्द सम्मोहित हो जाता है उसे सयोग सुख कामातुरता सौंदर्यानुभूति से मूच्छा तक आ जाती है । परिचय बढने पर सकोच और झिझक की जडता पिघल जाती है । मनोविनोद होने लगता है---

सकुचें उर मनहि मन वारी । गहु न हाथ रे जोगि भिखारी ।।
औहट हो स जोगी तौर चरी । आव वास कुरकुम्ह करी ।।
हौं रानी तू जोगि भिखारी । जोगिह भोगिह कौन चिन्हारी ।।"[4]

प्रबन्ध काव्य म प्रयत्न का चित्रण करने के लिए प्रचुर अवसर और क्षेत्र प्राप्त होता है । साध्य के मिल जाने पर वहन क लिए भी अधिक नही रह जाता । सूफी काव्य मे इसीलिए वियोग की अपेक्षा सयोग चित्रण कम है । पर सभोग का चित्रण सम्पूण अनुभवो, चष्टाओ क्रियाओ और हावो के साथ किया गया है । मधुयामिनी म मिलन और सभोग का वणन करन में अनेक स्थलो पर मर्यादा और साहित्यिक शील का उल्लघन भी है ।[5] ऐसे उत्तेजक और अश्लील सभोग शृगार म लौकिक पक्ष ही अधिक उभरा है, आध्यात्मिक बहुत दब गया है । सभोग या केलि क्रिया पक्ष को छोडकर, आध्यात्मिकता का पूरा का पूरा सकेत है ।

मधुयामिनी के अभूतपूव सुख और पति प्रम की जा अनुभूति प्रयसी को

---

१ पिउ हिरदय मह भट न होई । केहिरे मिलाव कहो केहि रोई ।।"
--जायसी ग्रन्थावली-वही, पृ० १७७

२ वही, पृ० १३३

३ अनचिन्ह पिउ काया मन माहा । का मैं कहव गहअ जो वाहा ।।'
--वही प० १३२

४ वही पृ० १३४

५ जायसी ग्रन्थावली पृ० १४०

होती है, उसका वणन आध्यात्मिकता की ओर सकेत अवश्य करता है। चारो ओर प्रिय ही दीखता है शृगार कर उसके पास जाने की आवश्यकता नही रहती।[1]

पति पत्नी का मिलन आध्यात्मिक मिलन है। प्रेयसी का अधरामृत पान जीवन को अमर कर देता है। प्रिय और प्रयसी गले मिलते ही द्वैत का दुःख भूल जाते हैं। सोना और सोहागा की तरह दोनो मिलकर एकाकार हो जाते हैं। दोनो के बीच का अन्तर मिट जाता है।[2] द्वैत भावना का ऐसा तिरोभाव होता है कि कौन किस पर रीझ और कौन किस को रिझाये, यह स्थिति भी उपस्थित नही होती। प्रिय प्राप्ति की यह स्थिति सूफी साहित्य का चरम लक्ष्य है। साधक जब साध्य के साथ आन द सभोग की इस परम दशा को प्राप्त करता है तीनो लोकों म बधावा बजने लगता है। धरती से आकाश तक खुशी की शहनाइयाँ बज उठती हैं[3]—है भी सचमुच यह ऐसे ही आन द उल्लास का अवसर।

उपरिलिखित इन सभी मिलन चित्रो मे लौकिकता से अधिक अलौकिकता है। इस अखण्ड मिलन को ही, जिसम प्रिय और प्रियतम एकाकार हो जाते हैं, फना कहा गया है। का रीझे रिझ वावई मे डा० सरला शुक्ल ने भी फना की स्थिति बताइ है।[4]

सूफी कवि लौकिक सौन्दय से परम सौदय की ओर अग्रसर होता है। क्या सयोग क्या वियोग दोना म कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है, जगत के समस्त व्यापार जिसकी छाया से प्रतीत होते हैं।"[5] 'दृश्य जगत के नाना रूपो को उसी अव्यक्त ब्रह्म के व्यक्त आभास मानकर सूफी लोग भाव मग्न हुआ करते हैं।[6]

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १४३

२ कहि सत भाव भई कठ लागू। जनु कचन और मिला सुहागू॥

—वही पृ० १३९

३ प्रम विछोहे जाहिदिन दुहुमिलि पूजी आस।

ती ह लोक वधावरा। महि पाताल अकास॥

—मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० १००

४ हि दी सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल पृ० ४९४

५ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५५

६ वही, पृ० १३५

(ग) प्रेम मार्ग की बाधायें

सूफी कवियों का प्रेम निरूपण आध्यात्मिक प्रेम की व्यंजना के निमित्त किया गया है। आध्यात्मिक प्रेम में प्रेमी (साधक) और प्रिय (साध्य परम तत्त्व) का एकात्म कठिनाई से होता है। साधक को संसार से पूर्ण विरक्त होकर एकनिष्ठ भाव से प्रेम मार्ग में आगे बढ़ना पड़ता है। उसे अपनी वृत्तियों को परिष्कृत करना पड़ता है। सांसारिक कामनाओं पर विजय प्राप्त करनी पड़ती है। तब कहीं उसे प्रिय की झलक मिलती है। इस आध्यात्मिक कठिनाई को लक्षित कराने के लिए प्रेमाख्यानों में प्रेम मार्ग की कठिनाइयों का विस्तृत उल्लेख किया गया है।

प्रेममार्ग में अनेक बाधाएँ आती हैं। यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। यह स्वर्ग से भी ऊंचा पहाड़ है बिना आश्रय के इस पर चढ़ना है।[1] कठिन इस दुर्गम पर्वत पर चढ़ना हंसी खेल नहीं, इसमें अनेक अलंघ्य घाटियाँ हैं। जिन तक पक्षियों अथवा चीटियों की भी पहुंच नहीं। मार्ग की खाइयाँ लांघना तो दूर किनारे इसकी पाताल जैसी गहराई को देखकर ही जंघाएँ काँप जाती हैं।[2] मार्ग की कठिनाइयों और समुद्र की गहराइयों को देख कर पैर डिग जाते हैं। प्रेम दुःख की भीषणता को व्यक्त करने के लिए हिन्दी की अधिकांश रचनाओं में नायकों का लम्बी लम्बी यातनायुक्त यात्राएँ करनी पड़ी हैं। मृगावती, 'मधुमालती' और 'पद्मावत' आदि सभी रचनाओं में इन यातनायुक्त यात्राओं की योजना है। इन यात्राओं में अनेक मानवीय अमानवीय अथवा प्राकृतिक बाधाएँ इन नायकों के मार्ग में प्रतिरोध प्रस्तुत करती हैं। इन बाधाओं के रूप में समुद्र, शत्रु शूली, झंझावात आदि सभी आते हैं और नायक इनसे प्रायः अपने आपको बचाता हुआ अपने उद्देश्य की ओर बढ़ता है।

प्रिया प्राप्ति के लिए नायक का योगी वेश में जाना मध्य काल के हिन्दी प्रेमाख्यानों काव्यों का विशिष्ट अभिप्राय है। कुछ ही ऐसे प्रेमाख्यान काव्य हैं

---

१ पेम पहार स्वर्ग ते ऊँचा। बिनु रेधे कौन तह न पहूँचा।
—चित्रावली, सं० जगमोहन वर्मा ना० प्र० स० काशी १९१२ ई०
पृ० ४०

२ 'कहेसि कुअर यह पथ दुहेला। अस जनि जानु हँसी औ खेला।
अगम पहार विषम गढ़ घाटी। पंखी न जाइ चढ़ नहिं चाटी॥
खोह घाट नहीं लाघी। देखि पतार कांप नर जाघी॥
—वही, पृ० ७९

जिनमे नायक प्रिय प्राप्ति के लिए योगी बन कर नही निकल पडता है। प्रेम कथाओ मे घटनाओ को नयी दिशा देने की दष्टि से यह विधान उपयोगी है ही, साथ ही प्रेम का महत्ता और चारित्रिक उत्कर्ष के चित्रण की दष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। स्वप्न या चित्र मे नायिका को देखने या शुकादि से उसका रूप गुण सुनने व बाद नायक भयकर विरह यथा से पीडित होता है और यह। वियोग बाधा इतनी बढती है कि यह उपल ध सभी ऐश्वय विलास का परित्याग करके योगी का वेश धारण कर लता है। दरवेश या फकीर का वेश धारण करना और नायिका अ वेषण म निकलना फारसी मनसवी काव्या का अपना विशिष्ट अभिप्राय है। और हि दी के सूफी प्रेमाख्यानो मे यह असदिग्ध रूप से स्वीकार किया गया है।

'पद्मावत मे रत्नसेन शुक से पद्मावती का रूप गुण सुनकर विरह से व्यथित हो मूछित हो जाता है। मानो सूय की लहर आ गया हो। प्रेममाग के घाव का दु ख कोई नही जानता। जिसे घाव लगता है वही जानता है। वह प्रेम के अपार समुद्र म गिर जाता है और लहर पर लहर आने से बेसुध होता जाता है। उस विरह भवर की भाँति उसे घुमाता है। जिसके कारण क्षण क्षण उसका जीव हिलोरे लन लगता है। वह कभी बाहर आता है और कभी भीतर जाता है। क्षण म बिना सास के हा जाता है और जीव डूब जाता है फिर क्षण भर मे बौराकर निश्वास छोडन लगता है। उसका मुख क्षण म पीत और क्षण म श्वेत हो जाता है। क्षण मे उसे चेत होता है और क्षण म अचत हो जाता है। प्रम का स्थिति मरन स भी कठिन होती है। क्योकि उसमे न तो प्राण जीता है और न ही मत्यु होती है।' नायिका दशन के पूव ही इस प्रकार की विरह यथा का होना भी इस प्रकार के प्रमाख्यान का अभिप्राय है। इस यथा की चरम परिणति राज्यत्याग और योगी बनकर प्रिय प्राप्ति क लिए चलने

---

१ सुनतहि राजा गा मुरछाई। जान हु लहरि सुरुज क आई॥
पेम घाव दुख जान न कोई। जेहि लगि जान प सोई॥
परा सो पेम समुद अपारा। लहरहि लहर होइ बिसभारा॥
बिरह भवर होई भावरि देई। खिन खिन जीव हिलोरहि लेई॥
खिनहि निसास बूडि जिउ जाई। खिनहि उठ निसस बोराई॥
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता। खिनहि चेत खिन होइ अचेता॥
कठिन मरन तें प्रेम व्यवस्था। न जिय जिवन न दसई अवस्था॥

—पद्मावत पृ० १३४ ३५

मे होती है । राजा रत्नसेन राज्य का परित्याग कर योगी हो जाता है और हाथ में किंगरी ले वियोगी बन जाता है । वह तन मन से पागलो की भाँति आचरण करने लगता है । मन प्रेम म उलझ जाता है और सिर पर जटायें बढ आती हैं । योगी वेश मे वह मेखला धारण कर लेता है । हाथ सिंगी चक्र और गोरख धधा ले लेता है । ग्रीवा म योगपटट और रुद्राक्ष धारण करता है । इस प्रकार तप और योग के लिए शरीर को तयार कर भिक्षाटन करने चलता है और कहता है मेरे हृदय मे जिसका वियोग है, उस पद्मावती को प्राप्त करके ही सिद्ध बनूगा ।[1] राजा की इस स्थिति से मुक्ति हेतु परिवार के लोग नेग पाने वाले नौकर चाकर राजा और राय सभी आते हैं ।[2] रत्नसेन जसे ही होश मे हआ मानो उसे बडी वराग्य उठ खडा हुआ । मानो कोई बावला होकर खडा हो ।[3] सभी प्रेममाग की बाधाओ को स्पष्ट करते हुए कहा हे राजन् ! मन म समझ कर देखा किसी से प्रेम नही करना चाहिए । प्रेम का नाम मधुर है पर उस खा लेन पर प्राण देना पडता है । जब प्रेम जोडा जाता है, तब पहल सुखानुभूति होती है फिर अ त म निर्वाह करना कठिन हो जाता है । साढे तीन हाथ का यह शरीर सुमरु जसा है । इसम इतना घुमाव है कि पहुँचना कठिन हो जाता है । आकाश म दष्टि रखने से सुमेरु पर पहुँचा जा सकता है किन्तु प्रेम दृष्टि म नही आता । वह आकाश से भी ऊँचा है । आकाश के ध्रुव से ऊँचे पर प्रेम का ध्रुव जाता है जो पहले सिर देकर पीछे इस माग में पर देता है । वही प्रेम के ध्रुव का स्पश कर सकता है । तुम राजा हो और सुखी हो । अपने राज्य और सुख का भोग करो । यह माग अति कठिन है ।

---

१ तजा राज राजा भा जोगी । औ किंगरी कर गहे वियोगी ।

\+ + +

चला मुगुति मागै कह साजिक पा तप जोग ।
सिद्ध होउ पद्मावति पाय हिरदै जेहिक वियोग ।।

पद्मावत—वही, पृ० १४२

२ जह लगि कुटुब लोग औ नेगी । राजा राय आए सब वेगी ।।

—वही पृ० १३५

३ जो मा चेत उठा वरागा । बाउर जनहु सोइ अस जागा ।।

—वही, पृ० १३७

डबकर प्रात काल उदित होता है उसक प्रभाव स वन के मजीठ और टेसू भी लाल हो जाते है। इस रुधिर धारा से धरा जितनी बलात हुई उतनी गरिक वण्य हो जाती है। और इतना ही नही तत्रस्थित पक्षि समवाय भी लाल हो जाते हैं। वसन्त म नवपल्लव वाली वनस्पति उसी से लाल हो जाती है।[1]

पूववर्णित माग की सभी बाधाओ की सूचना जायसी न राजा रत्नसेन क प्रस्थान के समय ही दे दी है। वह जानता है कि आग पवतो से आवृत माग है। अतीव भयानक पवत पडेंगे। बडे बडे दुगम घाट बीच बीच म नदी खोह और नाले पडेंगे। स्थान स्थान पर माग म चोर मिलेंगे। फिर हनुमान जी की हाक सुनायी देगी। उस समय न जान कौन पार होगा तथा कौन थककर रुक जायेगा।[2] हनुमान जी न भी भीमसेन से कदलीवन की दुगमता का वणन करते हुए कहा कि इस भयकर वन म सिद्ध योगी ही जा सकते हैं–

अन परमगम्यो य पवत सुदूरारुह ।
विना सिद्धगतिं वीर गतिरत्रन विद्यते ॥
देवलोकस्य मार्गो यमगम्यो मानुष सदा ।
कारुण्यात त्वामह वीर वारयामि निबोध म ॥[3]

यह पवत बडा दुगम है। वह ही दुरारुह है। हे वीर बिना सिद्धि प्राप्त हुए इस वन म कोई नही पहुच सकता। यह माग देवलोक को जाता है। मनुष्य क लिए सवथा अगम्य है। ह वीर म करुणापूवक वहाँ जान स तुम्हे रोकता हू।

पुन कवि माग की दुरूहता को व्यजित करते हुए कहता है ह पथिक! अब आँख स देखो और दृढ हो जाओ। आग आँखो से पथ्वी को देखकर पर बढाओ। जो पथिक पथ भ्रष्ट हो जाते हैं व मर जाते हैं क्योकि पथ पर चलना नही जानत। सब लोग परों म चरण पादुका धारण कर लो। जिससे न तो परो म काटा चुभे और न ककडी गडे। अब तुम उस वन खण्ड मे आ गय हो जहा विन्याचल के वन म दडकारण्य है। चारो ओर ढाक का वन

---

१ जस मारइ कहँ बाजा तूरू। सूरी देखि हसा मसूरू॥ पद्मावत, पृ० २६१

२ है आग परवत क बाटा। विषम पहार अगम सुठि घाटा॥
बिच बिच नदी खोह औ नारा। ठावहिं ठाव बठ बट पारा॥
हनुवत कर सुबन पुनि हाका। दहुँ को पार होइ को थाका॥'
–जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५७।

३ महाभारत वनपव अ० १४६/९२–९४।

ख्यत है । जो यहाँ भटक जाते हैं उन्हे अतीव दुख मिलता है । जहाँ काँटे र झाडियाँ हो वहाँ न जाना । मकोय के वक्षो से उलझकर कथा न फाडना भिण हस्त की ओर बीटर देग है और वाम हस्त की ओर चदेरी पडेगा ।[1] न दोनो के बीच स अनजाना रास्ता है । राजा इसी दुगम माग से आगे ढता है । मृगारण्य मे कुन्ना की सायरी पर सोकर रात्रि व्यतीत करते हुए ओड़ रास्ता पार करता है । एक महीने म वह किसी प्रकार समुद्र तट पर हुँचता है ।[2] कलिंग नरेश गजपती उसे समझाता है । राजा अपने लक्ष्य पर अडिग है । अन्तत गजपती उसे बोहित दता है । बोहित पर सवार होकर चल देता है ।[3] उसका मन सिहल द्वीप पर केन्द्रित है । बोहित जल की उत्ताल तरगो पर हिलकोरें खाते हैं ।[4] एक एक कर सात मयकर समुद्रो को पार करना पडता है । खीर समुद्र[5] दधि समुद्र[6], सुरा समुद्र[7], किलकिला समुद्र[8] आदि को पार करके राजा 'मानसर'[9] नामक सातवें समुद्र मे प्रवेश करता है । वहाँ स सिहल द्वीप का राजमदिर दिखायी दता है । राजा सिहल तट पर उतरता है । उसका प्रम सच्चा है । इसी के बल पर वह प्रेम की कठिनाइयो को पार कर सका है । शिवमडप म उसे पद्मावती की झलक मिलती है किन्तु अभी उसकी कठिनाइयो का अत नही है । पावती उसकी परीक्षा लेती है ।

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५७ ।

२ 'मासेक लाग चलत तेहि बाटा । उतर जाइ समुद के घाटा ।'
वही, पृ० ५९

३ 'निहच चला भरम जिउ खोई । साहस जहाँ सिद्धि तहँ होई ।"
—वही, पृ० ६२ ।

४ वही पृ० ६३ ।

५ खीर समुद का बरनौ नीरू । सतु सरूप पियत जस खीर ।"
—वही, पृ० ६४ ।

६ वही, पृ० ६४ ।

७ "सुरा समुद पुनि राजा आवा । महुआ मद छाता दिखरावा ।"
—वही, पृ० ६५ ।

८ 'पुनि किलकिला समुद मह आए । गा धीरज देखत डर खाए ।"
—वही, पृ० ६६ ।

९ "सतए समुद मानसर आए । मन जो कीन्ह साहस, सिधि पाए ।'
—वही, पृ० ६७ ।

शकर उसे सिद्ध गुटिका देते हैं। सिद्ध गुटिका लकर वह सिंहल गढ मे प्रवश करता है।[1] पकडा जाता है। उस शूली की आज्ञा होती है।[2] अन्तत भाट के समझाने पर और यह प्रकट करन पर कि यह सचमुच रत्न है। यदि शूली दी गयी तो अनथ हो जायगा। महादव ने अपना रणघट वजा दिया है।[3] राजा ग घरसेन मान जाता है। रत्नसन और पद्मिनी का विवाह हो जाता है।

यह सारी वाधाए प्रेम की शुद्धता एव अनन्यता की परीक्षा के लिये हैं। इसीलिये इ हे यथासम्भव बढा चढा कर वणन किया जाता है। जसा कि प्रारम्भ म कहा गया है आध्यात्मिक दुरूहता का व्यजित करन क लिय माग की इन कठिनाइयो का उल्लख होता है। जायसी न समासोक्ति पद्धति पर इन कठिनाइयो के उल्लख करन क साथ आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना की है। इस प्रकार प्रम मीमासा क अ तगत य कठिनाइयाँ अपनी साथकतता रखती है। जितना हा बडी बाधा का प्रमी अपनी निष्ठा एव निश्चय की दढता से पार करगा उसका प्रम उतना ही एक निष्ठ एव सच्चा माना जायेगा।

(घ) प्रेम की परिपक्वता एव अन यता

प्रमतत्व की पूणता एव परिपक्वता प्रियतम क प्रति एकनिष्ठ एव अन य भाव क उदय म हाती है। प्रम अद्व तता की सिद्धि की ओर ले जाता है। इसी लिए विचारको ने ज्ञानाद्वत क समानान्तर भावाद्व त की स्थापना की है। सूफी प्रेम साधना म भी यह अद्व त भावापन्नता लक्षित होता है। जायसी के प्रम निरूपण म भी प्रम की इस परिपक्वावस्था का निर्दिष्ट किया जा सकता है।

रत्नसन स जब पद्मावती का मिलन होता है तो उस समय पद्मावती अपने प्रम की परिपक्वता और अन यता का परिचय देती है। वह अपने प्रेम को चातक और मीन क प्रम की कोटि म रखती है। पद्मावती प्रम प्रभाव का स्वीकारती हुयी अपने अन य प्रम की ओर इगित करती हुयी कहती है प्रियतम, न जान तुमन यह कौन सी मोहनी डाल दी कि जो प्रेम व्यथा तुमम थी वही मुझम उत्पन्न हो गयी। जल क अभाव म जिस प्रकार मीन व्यकुल हो जाती है और क्षणभर भी जीवन धारण नही कर सकती है, ठीक वसा ही मेरा मन हो गया

---

१ जायसी ग्रन्थावली, प० ७१।

२ वही प० १११।

३ महादेव रणघट बजावा —वही, प० ११३।

४ वही, पृ० १२०।

था। मुझे भी तेरे अभाव की अनुभूति वसी ही हो रही थी जसी अनुभूति मछली को होती है। मैं चातक होकर 'पिउ पिउ' रटने लगी। मैं विरहाग्नि मे वसे ही दग्ध हुई जैसे दीपशिखा दग्ध होती है। तुम्हारा पथ जोहती हुई मैं स्वाति के लिए सीप के समान हो गयी। डाल डाल पर उडने वाली कोकिला की भांति मैं व्याकुल होने लगी। तुम्हारे लिये मैंने चकोरी बनकर रात्रि मे निद्रा को तिलांजलि दे दिया। इतना ही नहीं मेरे ही प्रेम के कारण तुममे प्रेम का उदय हुआ। जो सुवर्ण अग्नि मे तपाया गया वह स्वयमेव तप्त हो गया। जसे सूर्य की अग्नि से हीरा दिपता है वसे तुम्हारी प्रेम ज्योति ने हमको प्रदीप्त कर दिया।[1]

यह ध्यातव्य है कि मीन और चातक प्रेम की अनन्यता के लिए साहित्य मे प्रसिद्ध हैं। पद्मावती आगे कहती है कि सूर्य के प्रकाशित होने मे कमल विकसित होता है और नहीं तो उसमे कहां मिलिन्द और कैसी सुगन्ध ? जो ऐसा प्रियतम पति है उससे अन्तपट क्या ? तन, मन यौवन और प्राण देकर अब मैं स्वयं तुम पर न्योछावर हो गया हूँ।[1] प्रेम की अनन्यता का इससे श्रेष्ठ उदाहरण और क्या हो सकता है। जहां प्रिय को स्वयं को समर्पित कर देता हो। वह भी सर्वतोभावेन निष्कपट और निर्व्याज रूप से। रत्नसेन स्वयं प्रेम की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहता है तुम्हारे प्रेम के कारण ही मैं राज्य का परित्याग कर भिखारी हुआ। तुम्हारा प्रेम जो हमारे हृदय मे समाया तो चित्तौर मे भी मैंने किसी का स्मरण नहीं किया। जसे भ्रमर मालती पुष्प के लिए वियोगी बनता है वसे ही मुझे तुम्हारा वियोग चढा और मैं योगी बन कर निकल पडा। हे बाले ! मैं तुम्हारे लिए भिखारी हुआ। दीपक के लिए पतिंगा बनकर मैंने आग स्वीकार की। जसे भ्रमर कटकों की चिन्ता न करके

---

१ कवनि मोहनी दहुँ हुति ताहा। जो तोहि बिथा सो उपनी माही॥
बिनु जल मीन तपी तस जीऊ। चातिक भइउ कहत पिउ पिउ॥
जरिउँ बिरह जस दीपक बाती। पथ जोवत भइउँ सीप सवाती॥
डारि डारि जउँ कोइल भई। भइउँ चकोरी नीद निसि गई॥
मोरे पेम पेम तोहि भएऊ। राता हेम अगिनि जो तएऊ॥
हीरा दिप जो सुरुज उदोती। नाहित कित पाहन कहँ जोती॥
—पद्मावत पृ० ३७८–७९।

२ 'तासो कवन अंतरपट जो अस प्रीतम पीउ।
नेवछावरि गइ आप हो तन मन जोबन जीउ।' —वही, पृ० ३७९।

कमल को खोज कर पा लेता है, वसे ही मैंने तुम्हारे लिये अपने हृदय पर कटको का छेवा लिया। एक बार मर कर जब कोई प्रियतम स आ मिलता है, तो वह दूसरी बार मरने क्या जाय ? जो मर कर जिया हो, उसे मत्यु कहाँ ? वह तो प्रेम के कारण ही अमर हो गया और प्रिय का सानिध्य प्राप्त कर मधु का पान करता है। भ्रमर यदि बहुत क्लेश और बहुत आशा के बाद कमल की प्राप्ति करता है तो वह भ्रमर उस पर न्योछावर हो जाता है और कमल भी हँसकर प्रसन्नतापूर्वक सुगंध देता है।[1] इस पर पद्मावती कहती है कि अपने मुह से प्रशसा करना शोभा नही देता।[2] इस पर रत्नसेन कहता है– हे प्रिये तुम्हारे साथ मैंने प्रेम की गाठ जोडी है जो अब न काटे कट सकती है और न छुडाये छूट सकती है। मैं तुम्हारे रग म रग गया हू और सूर्य होकर आकाश मार्ग से चढा हूँ।[3] यहा पर रत्नसेन के प्रेम की परिपक्वता व्यजित है जिसम प्रगाढ़ दृढ़ता है। यह स्नेह सम्बन्ध अकाट्य है जिसे किसी भी प्रकार समाप्त नही किया जा सकता है। पद्मावती इस प्रेम की परीक्षा सी लेती हुयी कहती है– हे भिखारी योगी तू प्रेम मे अनुरक्त होने की बात कहता है पर मैं तुम्हे रगा हुआ (प्रेम मे अनुरक्त) नहीं देखती। केवल पट रजन से ही प्रेम का रग नही पहचाना जा सकता। वस्त्र तो बाहरी वस्तु है और प्रेम आन्तरिक।

---

१ 'भनु तुम्ह कारन प्रेम पियारी। राज छाडि क भएउ भिखारी।
नेह तुम्हार जो हिए समाना। चितउर माह न सुमिरउ आना॥
जस मालति कह भवर वियोगी। चला वियोग चलेउ होई जोगी॥
भएउ भिखारि नारि तुम्ह लागी। दीप पतग होई अँगएउ आगी॥
भँवर खोजि जस पाव केवा। तुम्ह काटे मैं जिव पर छेवा॥
एक बार मरि मिल जो आई। दोसरि बार मरकत जाई॥
कत तेहि मोचु जो मरि क जिया। मा अम्मर मिलि क मधु पिया॥
भवर जो पाव कवल कह बहु आरति बहु आस।
भँवर होइ नेवछावररि कवल दइ हसि बास॥'
–पद्मावत, पृ० ३५५।

२ 'अपने मुह न बडाई छाजा –वही पृ० ३५७।

३ तुम्ह सा प्रीतिगाँठ हौं जोरी। कट न काट छुट न छोरी॥
रग तुम्हारे रातेउँ चढ़उँ गगन होइ सूर।
जहँ ससि सीतल कह तपनि मन इछा धनि पूर॥
–वही, पृ० ३५८।

हृदय म लौटन से जो उत्पन्न होता है, वहा रग (प्रम) है । चाँद के रग (प्रम) म जब सूय रग गया, उमे ह्ा साय प्रात सब रक्त दसत हैं ।[1] पद्मावती रत्नसेन के अभाव म अपनी स्थिति का स्पष्ट करती हुयी कहती है कि तुम्हारे अभाव म मैं जीवन धारण नही कर सकती । मैं चातक की भाँति पिउ पिउ रटती हुयी भ्रमण करन लगूगी ।[2] इस कथन म भी प्रम की अनन्यता लक्षित की जा सकता है । कथमपि प्रियतम क अभाव म जीवन का परित्याग करना यह सिद्ध करता है कि पद्मावती क हृदय मे रत्नसन के प्रति अपार स्नह है जा पद्मावती के जीवन वाती का सिक्त करता हुआ प्रकाशित कर रहा है ।

रत्नसेन पद्मावती को देखकर वमुग्ध हा जाता है ।[3] अनन्यतम सुन्दरी अप्सरा के रूप म पावनी का देखकर भी माहित नहा होता है । यहाँ तक कि उसकी ओर आँख उठाकर भी नहा दखता है । वह कहता है, ह अप्सरि ! भले ही तुम लावण्यमयी हा पर मुझे दूसरे स बाता भी अच्छी नहीं लगती है ।[4] यह कथन प्रेम की एक निष्ठता और अनन्यता का द्योतक है । इसस यह प्रतीत होता है कि रत्नसन रूपलाभा मिलि द नहीं है । यही पर रत्नसन के प्रम का सच्चा रूप मुखरित हुआ है । दुष्यन्त का शकुन्तला क समान सौन्दय अ यत्र दिखायी नहीं दिया । लैला कोई खूबसूरत नहीं थी परन्तु मजनू की आँखा म वह अनुपमा रमणी थी । यह प्रेम की आखें हैं जा प्रियतमा का विश्वसुन्दरी बना दती हैं । रत्नसन और पद्मावता के उद्वाह क पश्चात पद्मावती का प्रेम दा स्थलों पर चरम उत्कर्ष प्राप्त करता है । पहला स्थान तो वह है जहाँ

---

१ 'जोगि भिखारि करसि बहु बाता । कहसि रग देखौं नहिं राना ॥
कायर रँग रग नहिं होई । हिए ओटि अपन रँग साई ॥
चाँद के रग सुरुज जौं राता । देखिय जगत साँझ परभाता ॥
—पद्मावत, प० ३५९ ।

२ तव हुत तुम बिनु रहै न जीऊ । चातक भइऊ कहत पिउ पिउ' ॥'
—जायसी ग्रन्थावली प० १३९ ।

३ जो मधु चहत परा तहि पाल । सुधि न रही ओहि एक पियाल ॥
परा भाँति गोरख का चला । जिउ तन छाडि सरग कहँ खेला ॥
—पद्मावत पृ० २२१ ।

४ भलहि रग ताहि आछरि राता । मोहि दासरें सौं भाव न बाता ॥
—पद्मावत पृ० २ ८ ।

प्राण दे दूँगी। यदि वह जीवित रहा तो मैं भी जीवित रहूँगी। प्रेम की परिपक्वता और अनन्यता का इससे ज्येष्ठ उदाहरण और क्या हो सकता है। रत्नसेन भी पद्मावती के प्रति अपने अनन्य प्रेम को प्रकट करता हुआ कहता है जिसका मन जिसमें रमता है, वह उसी का आश्रय ग्रहण करता है सोना और सुहागा मिलकर एक दूसरे से कदापि विलग नहीं होते वरन तद्रूप हो जाते हैं।[1] ठीक इसी प्रकार पदमावती प्रेमभाव की अद्वैत मूलकता की अभिव्यक्ति सखियों में करती हुई कहती है मेरा अपने प्रियतम पति से ऐसा अद्वैत भाव हो गया है कि समझ में नहीं आता कि शृंगार करके मैं उसके पास कहाँ जाऊँ? वह तो मुझे अब सर्वत्र दिखाई दे रहा है। मन को टटोलती हूँ तो वही प्रियतम मिलता है। मन तन से अलग नहीं हो सकता है। नेत्रों में भी वही व्याप्त है। वहाँ सिवाय उसके किसी को नहीं देखती हूँ। वह अपना रस अपने आप ही लेता है और अधरों का पान करने पर वह मुझे भी रस प्रदान करता है। हृदय थाल के समान है और कुच द्वय कंचन के लड्डू के समान हैं। जिसे मैंने बड़े चाव से आगे बढ़ा कर उसको भेंट किया है। मेरी लंक भेंट देने के उपरान्त उनकी लंक से हुलस कर चिपट गयी तब रमणकर्ता पति ने प्रसन्न होकर सम्भोग किया। सम्पूर्ण यौवन उसी में मिल गया। मेरा मतलब

हाड़-हाड़ महँ सबद सो होई। नस-नस माहँ उठै धुनि सोई।
माइ बिरह गा ताकर गूद मांस की खान।
हौं होइ साँचा परि रहा वह होइ रूप समान॥
—पद्मावत पृ० २९८-२९९

२ 'का सिंगार ताएहि कहँ जाऊँ। ओहि कहँ देखौं ठावहिं ठाऊँ।
जौं जिउ महँ तौ उहै पियारा। तन महँ सोइ न होइ निरारा।
नैनन्ह माँह तो उहै समाना। देखउँ जहाँ न देखउँ आना।
आपुन रस आपुहि पै लेई। अधर सोइ लागे रस देई।
हिया थार कुच कंचन लाडू। अगुमन भेंट दीन्ह होइ चाडू।
हुलसी लंक लंक सौं लसी। रावन रहसि कसौटी कसी।
जोबन सब मिला ओहि जाई। हौं रे बीच हुति गई हेराई।
जस किछु दीन्ह धरे कहँ आपन लीन्ह सँभारि।
तस सिंगार सब लीन्हेसि मोहि कीन्हेसि ठठियारि॥
—पद्मावत पृ० ३११

बीच मे खो गया। द्वैत भाव दूर हो गया। जसे कोई कही धरोहर रख दे और फिर बाद मे अपनी धरोहर लौटा कर सभाल ले, उसी प्रकार पति ने मेरा सब रस निचोड लिया और मुझे रस से रिक्त कर दिया। यहाँ हम देखते हैं कि जायसी ने नायिका पद्मावती के प्रेमभाव की अद्वैतता की व्यजना की है जो कि प्रेम की परिणति है। यहाँ पर पदमावती का आदर्श प्रेम भी प्रकट हुआ है। प्रेम की पराकाष्ठा पर पहुँच कर प्रेमी समस्त ससार को प्रियतम मय ही देखने लगता है। प्रेम के परिपक्व हो जाने पर प्रेमी स्वय को, एक प्रकार से पूण रूपेण खो कर अपना अस्तित्व ही नष्ट कर देता है, जिसे स्पष्ट करते हुए जायसी ने रत्नसेन की अवस्था का चित्र इस प्रकार खीचा है–

'बूद समुद्र जस होइ मेरा। गा हेराइ अस मिल न हेरा।
रगहि पान मिला जस होई। आपहि खोइ रहा होइ सोई।'[1]

कहने का तात्पय यह कि जिस प्रकार बूद का समुद्र मे मिलन हो जाय और बहुत ढूढन पर भी न मिल सके अथवा जिस प्रकार ताम्बूल पत्र रगो में मिलकर अपना अस्तित्व खो बठ उसी प्रकार राजा रत्नसेन ने अपने को खोकर प्रेम मे मिला दिया और प्रेमी एव प्रेम पात्र मानो दो से एक हो गये। प्रेम की परिपक्वता और अनन्यता का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है?

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जायसी ने प्रेम निरूपण के क्रम म प्रम के उस परिपक्व एव अनन्य रूप का निदशन किया है जो प्रेम को अद्वैत की स्थिति तक ले जाता है। जायसी की दृष्टि एक साधक की दृष्टि है। उनके लिए प्रेम सब कुछ है। जो ज्ञान, ध्यान योग यत्न से नही मिल सकता वह सब प्रेम की प्रगाढ अनुभूति एव अनन्य साधना से उपलब्ध हो जाता है।

[च] आलम्बन (नायिका) का स्वरूप

सूफी प्रेमगाथाओ का बीजभाव है प्रेम या रति। रति का प्रेरक या उत्तेजक है सौदय। सौंदय ही सवप्रथम प्रेमी को आर्कापित करता है। सौंदय ही प्रिय को पाने उसके उपभोग और उसके सान्निध्य साहचय की लालसा जगाता है। यही लालसा वासना का सहयोग पाकर उत्कट कामना सकल्प और रति या प्रेम का रूप धारण कर लेती है। सौन्दय द्विविध होता है। प्रथम रूपात्मक (शारीरिक) और द्वितीय शील प्रधान (आन्तरिक)। शील का ज्ञान तो

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ११४

बहुधा आलम्बन के जीवन म प्रवेश पाने एव निकट सम्पर्क मे आने पर ही होता है। यदा कदा प्रिय के गुण कर्म की चर्चा सुन कर भी शील का पता चलता है। रूप सुषमा, सुकुमारता, हाव भाव चेष्टाएँ, अलकार परिधान, शृगार सज्जा आदि दैहिक सौन्दर्य को आकार देते हैं।

हिन्दी प्रेमगाथाओ म आलम्बन का प्रेयसी की भावभूमि से उठाकर पत्नी के गरिमामय सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया है। प्रेयसी रूप म मिलनोत्कठा प्रेम की तीव्रता काम कातरता तथा विरह की तीव्रता के लिए अधिक अवकाश रहता है पर चिरन्तन मिलन अटूट सायुज्य निरन्तर एकात्मकता, अशकित तल्लीनता अनन्त सम्भाग सुख सुलभता पत्नी मे ही रहती है। भारतीय दाम्पत्य केवल सामाजिक विधान ही नही आध्यात्मिक धार्मिक सास्कृतिक अनुष्ठान भी है--लोक परलोक जन्म जन्मान्तर का अविभाज्य सम्बन्ध।

किसी भी गुण या विशिष्टता का ज्ञान दो रूपो मे होता है--आलम्बनगत और प्रभावगत (प्रतिक्रिया) रूप म। प्रभाव, प्रतिक्रिया परिणाम एक तो आश्रय म देखा जाता है दूसरे परिवेश, वातावरण या प्रकृति में। प्रकृति परिवेश पर जो प्रभाव कवि चित्रित करता है स्वय आश्रय बनकर उसकी कल्पना करता है। या आश्रय स्वय उस प्रभाव का निरूपण करता है। इसलिए परिवेशगत प्रभाव भी आश्रयगत समझना चाहिए। प्रेमगाथाओ के आलम्बन लोकदुर्लभ, चिरन्तन प्रभावशाली नितान्त मुग्धकारी अबाधा प्रमोत्तेजक रूप सुषमा-यौवन के अक्षय कोष हैं।

दैहिक सौन्दर्य चित्रण दो प्रकार स किया जाता है। परम्परागत नख शिख वर्णन और प्रसगानुसार भाव को अधिक रसात्मक और उत्कर्ष पूर्ण बनाने के लिए रूप चेष्टा चित्रण। ऐसा ही सौन्दर्य निरूपण सच्चे अर्थो म काव्य को समृद्ध करता है भाव का आकार प्रस्तुत करता है रस का अविभाज्य अग बनता है। नख शिख वर्णन सभी कवियो का समान होता है। पृथक पृथक अगो की बनावट और सुन्दरता उनके अनुरूप आभूषण रूपाकन परिधान, विविध अवयवो और अगो की चेष्टाएँ तथा उन सबके व्यापक प्रभाव का निरूपण भी नख शिख वर्णन म किया जाता है। सौन्दर्योत्कर्ष दिखाने के लिए उपमान भी अधिकतर बधे हुए और निश्चित से प्रयुक्त किये जात हैं। जायसी ने पदमिनी को आलम्बन रूप म चित्रित करते हुए उल्लसित भाव से उसका जो रूपाकन किया है वह हिन्दी काव्य जगत की अमूल्य निधि है---

माग

'बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ। उजियर पथ रैन मह कीया।

वचन रेख कसौटी कसी । जनु घन मह दामिनि परगसी ।
सुरज किरन जस गगन बिसेसी । जमुना मॉह सुरसती देखी ।
मांझै घार रुहिर जनु भरा । करवट लेइ बनी पर घरा ।
तेही पर पूरि घर जो मोती । जमुना माथ गांग कै गोती ।। [१]

उरोज

'हिया धार कुच कचन लारू । कनक कचोर उठे जनु चारू ।
कुदन वेल साजि जनु कूद । अमृत रतन मौन दुइ मूँदे ।।' [२]

भ्रू-नेत्र और कटाक्ष

'भौंहे स्याम धनुक जनि ताना । जा सहुँ हर मार दिस बाना ।
उह भौंहनि सरि केउ न जीता । अछरि छपी छपी गोपीता ।
मौह धनुक धनि धानुक, दूसरि सरि न कराइ ।
गगन धनुक जो उग, लाजहि सो छपि जाइ ।। [३]

ऊपर आलम्बन (पदिमनी) की मांग उरोज, भ्रू-नेत्र और कटाक्ष का सौन्दर्य अंकित है। यह नख शिख वर्णन भी बंधी हुई परम्परा के अनुसार ही है।

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि आलम्बन का यह सौन्दर्य चित्रण परम्परागत होते हुए भी अपनी विशेषता रखता है। इसमें उपमेय (वर्ण्य वस्तु) का वस्तुपरक रूप भी उपस्थित किया गया है और भावपरक भी। मांग की उज्ज्वलता की व्यंजना करने के लिए उस बहती हुई अमृत सरिता बताना अत्यन्त सूक्ष्म काव्य कल्पना का ही काम है। सघन श्यामल बालों के बीच मोती भरी मांग यमुना के मध्य बहती हुई गंगा सी लगती है—अंगों के आकार और गठन का आभास भी इससे मिल जाता है। पर ऐसे सौन्दर्यांकन से रतिभाव के उद्दीपन में न तो विशेष सहायता ही मिलती है और न नायिका के सम्पूर्ण या सम्मिलित सौन्दर्य का मुग्धकारी बिम्ब ही सामने आता है। पाठक उपमानों की लम्बी भीड़ में भटक जाता है सौन्दर्यानुभूति का अवसर ही उसे नहीं मिलता।

जैसा कि पूर्ववर्ती पंक्तियों में संकेत किया गया है जायसी के काव्य में

१ जायसी ग्रंथावली पृ० ४१
२ जायसी ग्रंथावली पृ० ४६
३ वही, पृ० ४२

नखशिख वणन परम्परागत हुए भी मुग्धकारी, भावोत्तेजक तथा सुषमा सम्पन्न भी है। उससे आलम्बन की अपूर्वता अनुपमयता अभिव्यंजित होती है--

ललाट

'कहौ लिलार दुइज कै जोती। दुइजहि जोति कहाँ ओती।
सहस किरिन जो सुरज दिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई।'[1]

ललित कपोल

'पुनि बरनौ का सुरग कपोला। एक नारग दुइ किये अमोला।
+ + +
तेहि कपोल बाएँ तिल परा। जेइ तिल देखि सो तिलतिल जरा।"[2]

पारदर्शी ग्रीवा

'पुनि तेहि ठाव परी तिनि रेखा। घूट जो पीक लीक सब देखा।'[3]

सुधा मधुर-वचन

रसना कहौ जो कह रस बाता। अमृत बन सुनत मन राता।
हर सो सुर चातक कोकिला। बिनु बसत यह बन न मिला।"[4]

पीयूष पगे अधर

अधर सुरङ्ग अमिय रस भरे। बिम्ब सुरङ्ग लाजि बन परे।
फूल दुपहुरी जानो राता। फूल झरहिं ज्यों ज्यों कह बाता।
हीरा लेइ सो विद्रुम धारा। बिहसत जगत होइ उजियारा।"[5]
अमिय अधर अस राजा सब जग आस करेइ।
केहि कह कवल बिगासा, को मधुकर रस लेइ॥'[6]

मुक्ताभास मुस्कान

जह जह बिहसि सुभावहिं हसी। तह तह छिटकि जोति परगासी।
कापिनिदयकि न सरवरि पूजो। पुनि ओहि जोति और को दूजी।
हसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारि सरि जो न क सका फाटेउ हिया दरक्कि॥

१ जायसी ग्रथावली पृ० ४३
२ वही पृ० ४४
३ वही पृ० ४५
४ वही, पृ० ४४
५ वही पृ० ४३
६ वही, पृ० ४४
७ वही, पृ० ४४

ऊपर पद्मावती की सुकुमारता सुषमा, मुस्कान और उनके व्यापक प्रभाव की अनुपम व्यंजना हुई है। कपोलों को नारंगी के रूप में चित्रित करना अलंकार मात्र नहीं, उनकी सुकुमारता, मधुरता, रेशमी झीनी अरुणाई, स्निग्धता शीतलता और क्षीणता का भी परिचायक है। तब विश्वमन मिलिन्द उस पर मुग्ध क्यों न हो ? पानपीक निगलते हुए पद्मावती के गले में अरुण रेखाएँ पड़ जाना तो उसकी विश्वदुर्लभ सुकुमारता और शरदपूनम सी उज्ज्वल ज्योत्स्ना के समान पारदर्शिता का परिचायक है।

आलम्बन में जो सौन्दर्य प्रतिष्ठा की जाती है, वह कल्पना की कारीगरी या बाजीगरी दिखाने के लिए या लक्ष्यहीन अबाध दौड़ प्रकट करने के लिए नहीं की जाती है। आलम्बन का सौन्दर्य उसके आन्तरिक जीवन से तो अखंड सम्बन्ध रखता ही है आश्रय के जीवन में भी वह अनुपम अनुभूति बता देता है। उसके भविष्य को भी चिरन्तन सुषमा, अभूतपूर्व अक्षुण्ण रस से लबालब कर देता है। जब कवि को ऐसी कला सिद्धि मिलती है, तभी वह अमर काव्य की सृष्टि करता है। प्रेम काव्यों के सर्जक इस प्रयोजन में पूर्णतः सफल हुए हैं। जायसी ने रति के आलम्बन रूप में पद्मिनी का जो स्वरूप अंकित किया है, वह अनन्यतम है।

ऊपर प्रस्तुत चिर प्रभासित सुषमा पुंज आलम्बन के अधर पीयूष आप्लावित हैं। उनकी स्वर तरंगों में अमन उच्छलित है। उनके शब्दों में फूल झड़ते हैं, उसकी अधर माधुरी से पीयूष की वर्षा होती है। जिसके अधरों से पीयूष वर्षा होती हो वह आश्रय के जीवन को कितना रसमय कर देगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है—गहन, एकान्त और अमिश्रित अनुभूति से उसका आस्वादन किया जा सकता है।

साधक के उजाड़ वियावान जीवन को सचमुच पीयूष ही चिर वसन्त में बदल सकता है। जिसका जीवन निविड़ अन्धकार के पंजों में पड़ा दम तोड़ रहा है, उसे दामिनी को लजाने वाली और प्रस्तरों में ज्योति जगाने वाली मुस्कान ही आलोकित कर सकती है। और अगर हीरकों की चमक विद्रुम की अरुणिमा के साथ मिलकर साधक के जीवन पथ को आलोकित करे तब तो कहना ही क्या ? हीरों की विटटी चमक चकाचौंध भी पैदा कर सकती है तब आँखें उस रूप का पूर्ण आस्वाद ही कैसे लेंगी ? गुलाबी आभा मिल जाने से वह प्रभातकालीन सुकुमार स्वर्णिम ज्योति बन जायगी। सौन्दर्य चित्रण की गरिमा उसके प्रभाव में निहित है। प्रभाव परिवेश गत और आश्रयगत—दो रूपों में देखा जा सकता है। सूफी काव्य का आलम्बन है परमात्मा जिसको

प्रेयसी और पत्नी के प्रतीक के रूप में निरूपित किया गया है। उसका प्रभाव भी विश्वव्यापक दिखाया गया है। ब्रह्म रूप नायिका जब इस पृथ्वी पर अवतरित होती है यह धरती आलोक और सौंदर्य से जगमगा उठती है। जिस रात को पद्मावती का जन्म सिंहल द्वीप में हुआ, चारों ओर प्रकाश उमड़ पड़ा। रात्रि भी दिन की भाँति जगमगा उठी।[1] न केवल यह धरिणी ही आलोक में निमज्जित हो गयी, स्वर्ग भी आलोकित हो गया। जिधर वह निकलती है प्रकाश की बाढ़ आ जाती है सुषमा से वह पथ अभिसिंचित हो जाता है। मानसरोवर भी उसके चरण-स्पर्श के लिए उल्लसित हो जाता है। जिधर देखती है, कमल खिल जाते हैं जिस ओर अपनी मुसकान छटा छिटकती है हीरे मानो बरसने लगते हैं—

कहा मानसर चहा सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई॥
भा निरमर तेन्ह पायन परसे। पावा रूप रूप के दरसे॥
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल गै तपनि बुझाई॥
न जनौं कौनु पौन लै आवा। पुन्य दसा भैं पाप गवावा॥
नैन जो देखा कमल भा निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा दसन जोति नग हीर॥[2]

रूप सुषमा के इस प्रवाह और आलोक के इस ज्वार को देखकर विस्मय आनंद होता है तन और मन सुख पुलकित और विस्मरण शिथिल हो जाता है। मान सरोवर का चरण स्पर्श करने और मन का ताप शांत करने के लिए ऊपर उछलना कवि के सौंदर्य चमत्कृत हृदयोल्लास को तो प्रकट करता ही है नायिका के ब्रह्मत्व का भी निरूपित करता है। एक टोकरी में नवजात शिशु श्रीकृष्ण को मथुरा ले जाते हुए जिन्होंने यमुना की लहरों का उछलकर उनके चरण स्पर्श करने का वर्णन पढ़ा है उन्हें इस पर अविश्वास न होगा।

आश्रय द्वारा आलम्बन का यह व्यापक रूप वर्णन अतीव मनोवैज्ञानिक है। प्रेमी यदि अपने प्रिय के रूप गुण को अद्वितीय न समझे तो उसका प्रेम एक निष्ठ नहीं हो सकता। अपने प्रिय को सर्वाधिक सुंदर मानकर ही प्रेमी उस पर आसक्त होता है। इसके साथ ही प्रेमी अपने प्रिय के रूप सौंदर्य का विराट देखना चाहता है। उसकी झलक से यह समस्त दृश्य लोक को आच्छादित समझता है। यह केवल आध्यात्मिक प्रिय के बारे में ही नहीं, भौतिक

१ भा निसि महँ दिनकर परकासू। जब उजियार भयउ कविलासू॥
—जायसी ग्रंथावली पृ० १९

२ जायसी ग्रन्थावली पृ० २५

जीवन म भी देखा जाता है । कवियो की बात तो निराली ही है, सामा य प्रमी भी अपनी प्रेयसी के रूप गुण को बढा चढा कर कहते हैं, वह किसी से छिपा नही है ।

सूफी प्रेमगाथाओ मे नायिका (साध्य) की जो रूप सुषमा, यौवन सुकुमारता अन त प्रभाव व्यापकता चित्रित की गयी है वह केवल अलकार वादिता और शास्त्र परम्परा पालन नही है वह प्रयसी के ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा है । प्रियतमा का नख शिख चित्रण ब्रह्म के उन गुणो की अभिव्यक्ति और अनभूति है, जिनके कारण वह नति नेति कहा जाता है । उसके अग प्रत्यग, अवयव और चेष्टाए क्रियात्मक और भावात्मक गुण सभी ब्रह्म के प्रकट अप्रकट स्थूल और सूक्ष्म गुणो के प्रतीक हैं । इस प्रतीको का अथ है उस अ यक्त को व्यक्त करना । इनका प्रतीकात्मक अथ जाने बिना प्रेयसी के ब्रह्म रूप का बोध नही हो सकता विद्वानो ने इनमे जो प्रतीकात्मक सकेत ग्रहण किये हैं वे उल्लेखनीय है ।

वेणी बाल—अधकार, आवरण माया, अज्ञान परमात्मा के साक्षात्कार मे बाधा, दुर्बोधता, आत्मा परमात्मा के बीच व्यवधान ।[1] साधक यदि कचो की सघनता, श्यामलता, उर्मिलता म ही रम गया तो साध्य के सच्चे स्वरूप का परिचय नही पा सकता ।

माँग—प्रकाश, ज्ञान बोधपथ साधना की सरल सीधी पगडण्डी ।[2]

भौंह-ब्रह्म की सकेत वक्रता उसके भावो का आभास पाने मे बाधा, साधना पथ की दुगमता और वक्रता । प्राणोत्सग करके ही उसकी साधना के पथ पर चला जा सकता है । इसीलिए उ हे खडग धनुषादि बताया गया है ।[3]

नयन तथा कटाक्ष-ब्रह्म की प्रेमोत्पादक मद विह्वलकारी । विरहोत्तेजक

---

१ 'वेनी छोर झार जो बारा । सरग पतार होइ अधियारा ।
—जायसी ग्रथावली पृ० ४१

२ बिनु सेंदुर जस जानहु दीआ । उजियर पथ रैन मे कीआ ॥'
वही पृ० ४१

३ जायसी ग्र थावली पृ० ४२

४ उहि मद चढ़ा परा तहि पा । सुधि न रही ओहि एक पियाल ॥
वही, पृ० ८४

और मारकशक्ति ।[१] प्रेम स्वीकृति सकेत ।[२] समय का आवर्तन प्रत्यावर्तन आदोलन सकेत ।[३]

अधर--अनुराग । अधर मुस्कान-प्रेम ज्योति ।

दन्तपक्ति तथा मुस्कान--अक्षुण्ण आदि ज्योति,[४] ब्रह्म की सुषमा का आभास या झलक ।

रसना और वाणी--इतिहास और धर्म आदि का आगार ।[५]

सूफी काव्य म आने वाले अनेक प्रतीकों के अर्थ मुहसिन फज काशानी ने *रिसाल पी मिनवाक म प्रस्तुत किया है । 'सूफीमत साधना और साहित्य'* मे भी इनकी व्याख्या दी गई है ।[६]

आध्यात्मिक क्षेत्र म प्रतीकात्मक अभिव्यजना पद्धति एक अनिवार्य तत्व है । मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी ने अपनी पुस्तक हकायके हिन्दी म ब्रज भाषा म उल्लिखित लौकिक और आध्यात्मिक काव्य म आने वाले अनेकानेक शब्दों का सूफीमत और कुरआन के अनुसार प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट किया है ।[७]

आलम्बन (नायक) का स्वरूप

सूफी काव्य का नायक धीरोदात्त के गुणों से सर्वाधिक अनुपात म सम्पन्न है । वह वीर निर्णय युद्ध कुशल उदार प्रतिभाशाली बलिष्ठ चेतनाशील क्षमाशील सुन्दर क्षत्रिय राजकुमार है । मुख्य रूप से वह रति और उत्साह का आश्रय है । किसी विश्वविश्रुत यौवन रूप सुषमा गुणशील की अक्षय राशि राजकुमारी के चित्रदर्शन रूप गुण श्रवण या साक्षात्कार स उसके हृदय

---

१ 'दिस्टि बान तस मारेहु घायल भा तहि ठाव ।
दूसरि बात न बोलै, लेइ पदमावति नाव ।। वही पृ० ९८

२ जोगी दिस्टि दिस्टि सौ लीन्हा । नैन रोपि नैनहि जिउ दीन्हा ।।
वही प० ८४

३ वही प० ४२

४ वही प० ४३-४४

५ वही प० ४४

६ वही प० ४४

७ सूफीमत-साधना और साहित्य डा० रामपूजन तिवारी । प० ५२४

८ सन् १५६६ ई० फारसी म लिखित और सयद अतहर अब्बास रिजवी द्वारा हिन्दी म अनूदित होकर ९ फरवरी १९५७ को प्रकाशित ।

९ हकायके हिन्दी, प्रथम अध्याय, प० ३७-७१

म प्रेम का उदय होता है। वह प्रेम प्रथम दर्शन का ही नहीं, प्रथम गुण श्रवण का भी है। नायक इतनी भावुकता और कल्पना का भंडार है कि वह वैयक्तिक रूप म मिलने से पहले कल्पना के मधुवन मे भावुकता को रोमाच सिहरन से कातर आशा की रंगीन चाँदनी के तले अपनी प्रेयसी से भेंट कर लेता है। उसके साहचय सुख की अनुभूति भी पा लेता है। देखते या सुनते ही नायक के हृदय से प्रेम का अबाध आकुल, अजस्र और आवेग भरा उत्साह उमड पड़ता है तोते के द्वारा पद्मावती का सौ दय वणन सुनकर रत्नसेन भी सुध बुध भूल जाता है—

"सुनतहि राजा गा मुरछाइ। जानौ लहारे सुरुज क आई।
प्रेम घाव दुख जान न कोई। तेहि लागै जान पै सोई॥
खिनहि उसास बूडि जिउ जाई। खिनहि उठ निसर बौराई॥
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता। खिनहि चेत खिन होइ अचेता॥[1]

सूफी नायक प्रेमपथ का बेधडक और आस्थावान पथिक है। ससार की कोई विघ्न बाधा उसे नही रोक सकती कोई अवरोध विचलित नही कर सकता और कोई प्रलोभन पथ भ्रष्ट नही कर सकता।[2] प्रेम की आधार रति की आलम्बन भावुकता और कल्पना की विश्राम, अभिलाषा की आकषण के द्र और अक्षुण्ण सौ दय सीमा प्रेयसी ही समस्त प्रयासो की पहुँच है, समस्त सघष का लक्ष्य है समस्त साधना की साध्य है। सभी सकल्प, सभी चेतना सभी कम सभी भाव उसी की साधना म सल्ग्न करता है। इसीलिए प्रेमी साधक की स्थिति ऐसी हो जाती है—

जब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौ सोइ उठि जागा॥
आवत जग बालक अस राजा। उठा रोइ हा ग्यान सो खोआ'॥[3]

प्रेम की दूसरी कसौटी है कि प्रेमी अपने प्रिय के रूप स जीवन और जगत की समस्त परिधियो को जगमग पाये। एक सच्चा प्रेमी अपने प्रिय को विराट रूप म देखता है। प्रिय म जगमगाते सौ दय की इसी व्यापक भावना अलकार शास्त्र को जन्म दिया। सूफी नायिका के ईश्वरत्व की बात

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४९
२ भलहि रग अछरी तोर राता। मोहि दूसर सौं भाव न बाता॥
मोहि आहि सवरि मुए तस लाहा। नन जो देखसि पूछसि काहा?"
वही, पृ० ९१
३ वही, पृ० ४९

एक ओर रखकर विचार किया जाय तो भी सौंदय की विराटमयता, सव ब्यापकता, लोकातिशयता ही रूप-वणन म सर्वाधिक तत्व है। प्रेयसी की आनन-श्री को देख कमल, चांद रति आदि के लजाने और नारग से कपोल[1] सुरग अमीरस भरे अधर[2] अमतमिश्रित कोकिला का स्वर[3] ज्योत्सना सी मुसकान आदि की कल्पना ही इसका प्रमाण है कि कवि अपनी नायिका को प्रकृति के असीम क्षेत्र म व्यापक देखना चाहता है। सूफी प्रेमी अपनी प्रेयसी को ब्रह्माण्ड क कण-कण म व्याप्त देखता है।

सूफी नायक प्रेमी है कामी नहा। एकनिष्ठ मी दर्योपासक है रूपलोभी नही। अपनी प्रेयसी के सिवा किसी दूसरे के यौवन सौ दय उपभोग की उस कामना नहा। प्रयसी के अतिरिक्त कोई भी रूप सुषमा कोई भी यौवन समपण उस आकर्षित नही कर सकता। पातनी एक अप्सरा का रूप धारण कर रत्न सेन क प्रम की परीक्षा लेने आती है रत्नसेन अपने अचल प्रम का परिचय देते हुए कहता है–

'भलहि् अछगी रग तोर राता। मोहि दूसर सो भाव न बाता"।[4]

प्रेम की सच्ची कसौटी है वियोग। सयोग है प्रेम का सम्भोग पक्ष। उप भोग है काम की तप्ति। काम पक्ष म प्रम का गाम्भीय स्थायित्व अन यता उज्वलता उसके लिय किय गय त्याग और चुकाये गये मूल्य का पता नही चल सकता। प्रमा की निष्ठा दृढ़ता अडिगता आत्मसमपण सुख वभव का उत्सग प्रम पथ के कष्ट सहन का पता वियोग स ही चलता है। वियोग ही प्रेम का त्याग पक्ष या साधना पक्ष है। साध्य के महत्व मूल्य और अलभ्यता का पता भी वियाग पीडाओ क अनुपात से चलता है।

सूफी नायक की प्रेयसी असामा य सुन्दरी है-लोकातीत आन द विधात अभय दानि और परितप्ति दात है। उसके पाने के लिए कठिन परीक्षा से भी गुजरना पडता है। वियाग ही परीक्षा है-उसकी पात्रता की कसौटी है। भीषणतम कष्टो दुल य बाधाओ और असह्य अभावो को अगीकार करता है। वह पगडडी विहीन सघन तिमिर आतकित वनो म अपनी साधना की लौ

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४४।

२ वही, पृ० ४३।

३ वही पृ० ४४।

४ वही पृ० ४३।

५ वही, पृ० ९१।

मलाता पथ बनाता है। बीहड़ वियावान रेगिस्तान को अपने आँसुओं की भागीरथी से सींचता है। दुर्गम भूधरों के अभिमानोन्नत मस्तकों पर अपने कठिन श्रम की अमिट लकीरें खींचता है। प्राण प्यासे बौखलाए सागरों की लहरों से खेलता हुआ पार हो जाता है।

उसके विरहोद्गारों में अन्ततम का चीत्कार है। उच्छवासों मे जीवन भर के समस्त कलुषों और वासनाओं को भस्म कर देने का सामर्थ्य है। उसकी भीगी सिसकियों में प्रिय की निर्ममता को पिघला देने की क्षमता है। प्रेम वियोगी साधक की अवस्था ऐसी करुणाजनक है कि धरती आकाश, वन कानन और पशु पक्षी भी उसके प्रभाव से नहीं बचते, मानव की बात ही क्या ?[1] प्रभाव प्रतिक्रिया ही किसी कर्म या भावना की कसौटी है। यह प्रभाव प्रकृति परिवेश और प्रिय के हृदय परिवर्तन दोनों पक्षों में देखा जाता है। रत्नसेन की वियोग जर्जर अवस्था और कठोर साधना देखकर महेश भी 'मयारू' (दयालु) बन जाते है।[2] यहाँ तक कि पद्मावती के पिता गंधर्वसेन द्वारा रत्नसेन को बन्दी बनाकर सूली देने की बात जानकर भगवान शंकर उसके विरुद्ध युद्ध करने को तत्पर हो जाते हैं।[3]

नायक के अभूतपूर्व कष्ट सहन, लोक दुर्लभ त्याग अचल प्रेम, अनाकलित आस्था को देख नायिका हृदय भी द्रवित हो जाता है। सहानुभूति या समवेदना जन्य प्रेम का उदय ही उसके हृदय में नहीं होता, वह रति की आश्रय भी बन जाती है-नायक आलम्बन हो जाता है। नायिका भी नायक के समान विरह में तड़पती और मिलन के लिए आकुल हो जाती है। दोनों मे प्रेम समान आस्था हो जाती है। भक्त की सच्ची साधना उत्सर्ग भावना, अडिग आस्था को देख भगवान् की करुणा उस पर बरसने लगती है।

माधुर्य भाव की भक्ति का साधक होते हुए भी नायक लौकिक उत्तरदायित्व के प्रति पूर्ण सजग और सचेष्ट है। उसका लोक पक्षी रूप भी उतना ही सम्पन्न है जितना अध्यात्म पक्षी। लौकिक रति भी वीरभाव की प्रेरक है। पर उसका प्रदर्शन वह नायिका प्राप्ति के लिए ही नहीं करता समाज, कुल,

---

१ नर्नाहि चली रकत कै धारा। कथा भीज भएउ रतनारा ॥
सूरज बूडि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता ॥
—जायसी ग्रन्थावली पृ० ९८।

२ 'रोवत बूढ़ि उठा संसारू। महादेव तब भएउ मयारू ॥"-वही पृ० ९२

३ हिन्दी सूफी कवि और काव्य डा० सरला शुक्ल पृ० ५५५, ३८१।

देश और मानवता की स्थिति और रक्षा के लिए भी वह वीरकम करता है। किसी भी अपरिचित असहाय की रक्षा के लिए उसकी बलिष्ठ भुजायें प्रस्तुत हैं किसी भी अरक्षित उत्पीडित के उद्धार के लिए वह जान पर खेल जाता है। सभी नायक क्षत्रियोचित उदारता करुणा, धीरता, निभयता क्षमाशीलता और विश्व मगल की भावना का अनुपम परिचय देते हैं।

सूफी कवियो ने आलम्बन आश्रय या परमात्मा आत्मा के सम्ब ध को स्पष्ट करने और उनमे प्रेम की गूढता गहनता, चिन्तनता रहस्यात्मकता एकरूपता आदि को अभिव्यक्त करने के लिए उन्हें अनेक उपमानो या प्रतीको के रूप मे उपस्थित किया है। *केतकी कमल मालती चम्पा आलम्बन है* और भ्रमर आश्रय।[1] दीपक और पतग[2] फिंतिग और भ ग[3], सूय और कमल, जल और मीन[4], च द्र सूय[5], च द्रमा और राहु स्वातिबू द और सीप तथा चातक[6], चन्द्र और चकोर[7] साधना क्षेत्र मे उन्हे मरजी वा और मोती[8] जोगी[11] तथा गुरु चेला गोरख और चेला[12] के रूप मे साध्य और साधक को प्रस्तुत किया गया है। गुरू शिष्य के रूप मे तो निगु ण काव्य मे साध्य और साधक अभिव्यक्त हुए है अ य प्रतीक भी परम्परागत है। चाद और सूय के रूप म वे सर्वाधिक आये हैं और केवल जायसी म ही। सम्भवत इसीलिए, क्योकि सूय म आग है और च द्रमा मे शीतलता विरह और शमन, जलन और शक्ति।

तात्पय यह कि सूफी प्रेमका य म आलम्बन को अत्यधिक महत्व दिया गया है। प्रेम जितना ही ऊँचा प्रगाढ एव प्रेरक है उसका धारण करने वाला भी उतना ही उदात्त धीर सयमी, एकनिष्ठ एव व्रती है। जायसी ने प्रेम के *आलम्बन (नायक नायिका)* को *आध्यात्मिक प्रेम की उच्चता के अनुकूल* अत्यन्त महिमामय रूप में प्रतिष्ठित किया है। आलम्बन की व्यक्तित्व प्रतिष्ठा

---

१ जायसी ग्र थावली, प० ७७ १०० १०९, १३५, १५१।
२–३ वही प० ७७ ५१ ७०, ९९, १००, १३५।
४ वही, प० १०९।
५ वही प० ७९।
६ वही प० ७७ ७८ ८४ ८५ १०० १०१, १२६, १३५।
७–८–९- १० वही पृ० १००।
११ चित्रावली उसमान प० १३७–१५५।
१२ जायसी ग्र थावली पृ० १०१, १०९, १३५।

करते हुए उन्होंने केवल फारसी प्रेमाख्यानो की रूढ़ियो का अनुसरण नही किया है वरन भारतीय मर्यादा का भी ध्यान रखा है। सबसे बडी बात यह है कि उन्होंने प्रेम की आध्यात्मिक गरिमा के अनुकूल ही आलम्बन को महिमामय एव धीरोदात्त बनाया है।

(छ) प्रेमी की मन स्थिति

भौतिक जगत मे भी प्रेम एक ऐसा तत्व है जो प्रेमी को प्रिय की भावना मे निरन्तर लीन रखता है। प्रिय का निरन्तर ध्यान करता हुआ प्रेमी उससे मिलने की अभिलाषा सजोये हुए अनेक मानसिक स्थितियो को पार करके उससे पूर्ण एकात्म भाव स्थापित करता है। यदि प्रेम आध्यात्मिक एव रहस्यात्मक है तब तो प्रेमी साधक के मन को पूर्ण परिष्कृत भी करना पडता है। प्रेमी साधक को रहस्यमयी सत्ता से पूर्ण ऐक्य की अनुभूति सहसा नही होती। उसे अनेक मन स्थितियो के पडाव को पार करना पडता है। पहली स्थिति जागरण (State of awakening) की मानी गई है। मानव आत्मा शुद्ध और चैतन्य है। उसका भौतिक पदार्थों से किया गया गठबन्धन अस्वाभाविक है। यह आत्मा अपने पूर्वरूप मे विलय के लिए—शुद्ध चेतन तत्व से ऐक्य स्थापन के लिए—व्याकुल रहती है। जिस समय वह उपयुक्त गुरु के द्वारा उदबुद्ध कर दी जाती है और ससार की असारता को समझ लेती है उस समय जागरण की स्थिति मे आ जाती है। इस अवस्था का जायसी ने अपनी प्रेम कथा मे स्पष्ट सकेत किया है। गुरु तोते के द्वारा पद्मिनी की रूपचर्चा सुनकर सहसा भौतिक ससार से विरक्त सा हो जाता है। यह रूप वर्णन उसे इतना प्रभावित करता है कि उसकी भौतिक चेतना लुप्त हो जाती है। वह सज्ञाहीन हो जाता है और जब प्रियतमा के उस दिव्य सौन्दर्य की तन्मयता मे कुछ समय सज्ञाहीन बने रहने के उपरान्त उसे होश आता है तो उसके हृदय मे वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है और उसे सारा ससार नीरस प्रतीत होने लगता है—जब मा चित उठा बैरागा।[1] हीरामन तोते द्वारा पद्मावती के अनिर्वचनीय रूप की चर्चा सुनकर राजा रत्नसेन का सहसा ससार से विरक्त हो जाना जागरण की स्थिति है।[2] जागरण के पूर्व का दृश्य है जब साधक रत्नसेन गुरु से दिव्य सौन्दर्य का सदेश पाता है तो वह उस रूपासव की मदिरा मे विभोर हो उठता

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४९।

२ 'सुनतहि राजा गा मुरझाई। जानौ लहरि सुरुज कै आई॥'

—वही, पृ० ४०।

है। यह वह अवस्था है जब साधक (प्रेमी) सुआ रूपी गुरु से पद्मावती रूपी विराट ब्रह्म से दिव्य सौन्दर्य की झलक पता है तो वह उसकी प्राप्ति के लिए तड़प उठता है। जब प्रत्यक्ष जगत मे उसे नही पाता है तो विरह म तड़पने लगता है। अन्य सूफी कवियो ने भी प्रेमी की मन स्थिति का चित्रण उपयुक्त प्रकार से ही किया है।[1] किन्तु सासारिक कर्मों का परित्याग किये बिना और पूर्णत पवित्र तथा निर्मल हुए बिना शुद्ध चेतन सत्ता (साध्य) की ओर अग्रसर नही हो सकता है। इसीलिए परिष्करण' की आवश्यकता पड़ती है।

इस दूसरी स्थिति को परिष्करण (State of purification) की अवस्था कह सकते है। परिष्करण के लिए सूफी साहित्य म अनेकानेक प्रकार के नियमों एव विधानो की व्यवस्था की गई है। इनमे तोबा (अनुताप) खौफ (ईश्वर भय), तवक्कुल (ईश्वर का विश्वास) फकर' (द य) सब्र (धय), रजा (शान्ति) रिजा (आशा) शुक्र (अनुग्रह) आदि मानसिक स्थितियाँ आती हैं। जिक्र (स्मरण) मुराक्बत (ध्यान) शरीअत (विधिनिषेध का पालन), तरीक्त' (शुद्ध मन से भगवान का ध्यान) आदि साधनाए भी आत्मपरिष्करणार्थ ही मान्य हैं। आत्मपरिष्करण की यह स्थिति पद्मावत मे भी प्राप्य है। रत्नसेन का योगी रूप मे निकलकर सात समुद्र पार करना सूली को सहर्ष स्वीकार करना परिष्करण की स्थिति के रूप म मान्य हो सकता है। विरह की ज्वाला आत्मा का सारा कलुष भस्म कर उसका परिष्कार कर देती है। इसीलिए भक्तो और सूफी साधको को हम सा य क विरह मे अतिशय व्यथित पाते हैं। इस अवस्था म साधक अपने साध्य को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो सकता है। विरह की ममान्तक पीडा इस सासारिक वासनाओ से अलग कर एकमात्र प्रिय के चिन्तन म लीन कर देती है। वह सारे ससार म प्रिय की अनुभूति करने लगता है। विरह का यह प्रभाव क्रमश आत्मा का परिष्करण करता जाता है और साधक (प्रेमी) साध्य

१ प्रेम प्रीति जो जिउ डरगरई। प्रीतम राख और सब जरई॥
पेम दुख सब दुख सो भारी। निर तिल मरन सहज दव हारी॥
प्रान जात वरु छाडि सरीरा। विधि कतसिर प्रेम की पीरा॥
राज वग धन जोवन गऊ। जब सो जीव विसभर भएऊ॥
धाइ प्रेम समुद यह देखि दौर घसि लेउ।
क मानिक क ल ऊबरौ क वह पथ जिउ देऊ॥
—जायसी का पद्मावत)डा० गोविन्द त्रिगुणायत।
शास्त्रीय भाष्य)पृ० १५७ पर उद्धृत।

(प्रियतम) प्राप्ति के लिए विभिन्न प्रकार की साधनाएँ करने लगता है। साधक शुद्ध और निवृत्तिपरक आचरणा की सहायता से शरीर और मन को शुद्ध करता हुआ इस साधना पथ पर अग्रसर होता है। इस साधना मार्ग मे चार पड़ाव मान गय हैं। शरीअत, तरीकत हकीकत और मारिफत। इस साधना की अन्तिम अवस्था हाल अर्थात् भावातिरेक की चरमावस्था मानी गयी है। यही आत्मा और परमात्मा का मिलन होता है। जायसी ने पद्मावत' म इन्ही चारो पड़ावो की ओर सकेत करते हुए कहा है –

'चार बसेरे सौं चढ सत सौं उतर पार '[1]

यह चारो पड़ाव क्रमश प्रेमी साधक की उच्चतर मन स्थिति के द्योतक हैं। शरीअत मे वह धार्मिक विधि विधानो का अनुसरण करके अपने मन को धार्मिक एव पवित्र वातावरण से सम्बद्ध करने का अभ्यास करता है। 'तरीकत' की अवस्था मे उसकी भावनाएँ एकनिष्ठ होने लगती हैं और वह उपासना में लीन हो जाता है। मानसिक विकास के तीसरे स्तर पर हकीकत की स्थिति म वह हक या सत्य को पहचान लेता है। 'मारिफत' की अवस्था मे प्रेमी साधक को प्रेम की गहरी अनुभूति होती है। उसका हृदय दपण के समान स्वच्छ हो जाता है। जिस प्रकार स्वच्छ दपण सूय के प्रतिबिम्ब को पूण से अपने म धारण कर लेता है उसी प्रकार मारिफत' की स्थिति मे पहुँचे हुए प्रमी साधक का स्वच्छ हृदय परमतत्व (प्रिय) के स्वरूप को अपने स्वच्छ हृदय मे पूण रूप स धारण करने म समथ हो जाता है। यही वह अवस्था है जिसम पहुँच कर प्रेमी अपने को प्रिय क स्वरूप मे लय कर देना चाहता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जायसी का परिष्करण विषयक विचार भाव प्रधान है फिर भी वे शारीरिक परिष्करण (State of Purification) की आवश्यकता को स्वीकारते हैं।

तीसरी स्थिति प्रकाशानुभव (State of Illumination) की मानी जाती है। यह एक प्रकार से भावातिरेक की स्थिति है। जिसमे साधक को साध्य की प्रेमानुभूति होती है। मुक्त शुद्ध और चतन्य सत्ता स पूर्ण ऐक्य की स्थिति क पूव सासारिक विघ्न एकबार पुन साधक को विचलित करना चाहते हैं। जायसी अपन आराध्य की एक झलक पाकर उसके लोक का वणन करने लगने हैं।

जहाँ न राति न दिवस है जहाँ न पौन न पानि।

---

१ जायसी ग्र थावली पृ० १६।

तेहि वन सुअटा चलि बसा, कौन मिलाव आनि ।।"[1]

शिव मंदिर मे पद्मावती का प्रथम साक्षात्कार प्रकाशानुभव की स्थिति के रूप मे स्वीकार कर सकते हैं। इस प्रकाशानुभव के बाद भी प्रिय से मिलन की पूरी संभावना नहीं होती। प्रेमी की मानसिक दशा मे भाव की संकल्प विकल्प की संभावना रहती है। सच्चा प्रेमी इस झलक के बाद प्रिय के प्रति अत्यंत तीव्र भावावेग का अनुभव करता है। रत्नसेन की प्रेम साधना के अन्तगत हम यह स्थिति देखते हैं। शिवमन्दिर म पद्मावती की झलक पाकर वह भावाकुल हो जाता है। उसकी प्रेमनिष्ठा बढ़ जाती है। वह बड़े से बड़ विघ्न पर जय प्राप्त करने के लिये दृढ निश्चय कर लेता है। इसी निश्चय के साथ वह सिंहलगढ म प्रवश करने को उद्यत होता है।

चौथी स्थिति विघ्नो की रात' (Dark night) कही जाती है साधक को साध्य की आनंद अनुभूति की यह अवस्था अधिक समय तक नहीं रहती। अनेकानेक प्रकार की बाधाएँ माग मे उपस्थित हो उसम विघ्न डालती हैं। गन्धवसेन द्वारा रत्नसेन का पकड़ा जाना विघ्नो की रात है। जहा रत्नसेन को मानसिक सघष करना पड़ता है।

पाँचवीं स्थिति पूण ऐक्य (Unitive State) की है। इस स्थिति में साधक साध्य से अभिन्न हो जाता है। साधक (प्रेमी) साध्य प्रियतम का मिलन हो जाता है। जायसी की पद्मावती भी सुहाग रात को इस पति मिलन की कल्पना कर रोमांचित हो कहती है –

'अनचिन्ह पिउ कांपो मनमाहा। का प करब गहब जो बाहा।।
बारि बस गई प्रीति न जानी। जुवा मई ममन्त भुलानी।।
जोवन गरब न मैं किछु चेता। नेह कि जानों सावकि सेता।।"[2]

इस रोमांचित अवस्था के उपरान्त पूण मिलन की स्थिति आती है। रत्नसेन का पद्मावती से मिलन पूणतादात्म्य (Unitive) की स्थिति है।

मिस इवालिन अडरहिल ने साधक (प्रेमी) की उपयुक्त पांच स्थितियाँ बतायी हैं। यह स्थितियाँ ऐसी हैं जो सामान्यत सभी रहस्यवादी प्रेमी साधको में लक्षित की जाती हैं। किन्तु साधक एव परिस्थिति भेद के अनुसार यह स्थितियाँ अधिक भी हो सकती हैं। साधक की मन स्थितियाँ पाँच ही हो, ऐसा आवश्यक नहीं। पूण एकत्व की मन स्थिति प्राप्त करने तक अनेक

---

१ जायसी ग्रन्थावली, पृ० २७।

२ वही, पृ० १३२।

मानसिक स्थितियाँ हो सकती हैं ।"[1]

वस्तुत प्रेमी साधक की मन स्थितियों का अध्ययन अत्यन्त कठिन विषय है। उपयु क्त विवेचन रहस्यवादी साधना मे निरुपित मानसिक विकास की अवस्थाओं को ध्यान म रखकर किया गया है। प्रिय की ओर उन्मुख होने की स्थिति स लेकर उसके व्यक्तित्व में लय होने की स्थिति तक जाने कितनी मानसिक दशाओ स साधक को गुजरना पडता है। भारतीय प्रेम-पद्धति मे पूर्वानुराग के अन्तगत ही सभी कामदशाओं का वणन किया गया है। यदि हम चाहें तो उन सभी दशाओ का अन्तर्भाव इसक अन्तगत कर सक्ते हैं। प्रिय से मिलने की अभिलाषा, चिन्ता स्मरण, जिज्ञासा, भय, लज्जा, सकल्प विकल्प, स्वरूपाभास, दिवास्वप्न, औत्सुक्य आदि अनेक दशाएँ प्रेमी मन के साथ जुड़ी होती हैं। जायसी के प्रेम काव्य म ही यदि 'रत्नसेन' और 'पद्मावती' इन दोनो पात्रो की प्रतिक्षण की मानसिक स्थितियो का विवरण प्रस्तुत किया जाय तो प्रेमियों के मनोविज्ञान की अच्छी जानकारी हो सकती है। यहाँ हम इतना ही कहना चाहेंगे कि प्रेमी साधक की जितनी भी मन स्थितियाँ क्यो न हो वह सब 'प्रेम' की केन्द्रीय चेतना से नियन्त्रित होती हैं।

---

१ मध्ययुगीन काव्य साधना डॉ० रामचन्द्र तिवारी पृ० १२१।

३ | प्रेम का स्वरूप : आध्यात्मिक या लौकिक

महाकवि जायसी सूफी स त थे और सूफियो में ईश्वर की कल्पना 'प्रेम के रूप मे ही की जाती है। 'पद्मावत मे जिस प्रेम की व्यजना की गयी है, उसके विषय म विद्वानो का मत है कि यह लौकिक प्रेम न होकर अलौकिक या आध्यात्मिक प्रेम है और राजा रत्नसेन और रानी पद्मावती की प्रणय कथा लौकिक प्रणय कथा न होकर आत्मा और परमात्मा के मिलन की कथा है। कुछ विद्वानो का मत है कि पद्मावत' म कवि आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना करने म असफल रहा है। अतएव पद्मावत की कथा लौकिक प्रेमकथा ही है।

आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना- -लौकिक प्रेम वणन द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति

आचाय रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जायसी का पद्मावत एक प्रेमगाथा है पूण जीवन गाथा नही। जायसी ऐकान्तिक प्रेम का गूढता और गम्भीरता के बीच बीच मे जीवन के और अगो के साथ भी उस प्रेम के सम्पक का स्वरूप कुछ दिखाते गये है इससे उनकी प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गयी है। पर है वह प्रम गाथा ही पूण जीवन गाथा नही।"[1] पद्मावत का पूर्वार्द्ध प्रेम के विवरण से परिपूण है और उसमे प्रेम भाव का जसा उत्कष दृष्टिगत होता है वह स्वय मे श्रेष्ठ एव महान है। पद्मावत म जिस प्रेम की व्यजना की गयी है उसके सम्बध म विद्वानो का मत है कि यह लौकिक प्रेम न होकर अलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रम है। रत्नसेन और पद्मावती की कथा लौकिक प्रेम कथा न होकर जीवात्मा और

---

१ जायसी ग्रन्थावली–आ० रामचन्द्र शुक्ल–ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३०

परमात्मा के मिलन की कथा है, जिसम लौकिक प्रेम की व्यजना द्वारा आध्यात्मिक प्रेम व्यजना करना ही कवि का लक्ष्य रहा है ।[1] आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'जायसी ने पद्मावत म जिस उद्दाम प्रेम का वणन किया है, वह आदर्श और ऐकान्तिक प्रेम है । उसम लोक मर्यादा का अतिक्रमण दोष नहीं, गुण समझा जाता है । यह प्रम सोद्देश्य भी है। लौकिक प्रेम के बहाने कवि सदा अलौकिक सत्ता की ओर इशारा करता रहता है ।''[2] आचाय शुक्ल क अनुसार इस का य म एक प्रब ध के भीतर शुद्धभाव (रतिभाव) के स्वरूप का ऐसा उत्कष जो पार्थिव प्रतिब धो से पर होकर आध्यात्मिक क्षेत्र म जाता दिखायी पड़े जायसी का मुख्य लक्ष्य है ।[3] डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने भी इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया है । उनके अनुसार इसमे 'जो प्रेम की व्याख्या की गयी है, उसम जहाँ शरीर पक्ष की अवमानना कर सूक्ष्मता की ओर कवि की लेखनी चल दती है वहाँ ऐसा प्रतीत होन लगता है, कि मानो कवि आध्यात्मिक प्रेम की झाँकियाँ हम द रहा है ।''[4] डा० रामकुमार वर्मा के शब्दो मे भी जायसी ने अपन पद्मावत' की कथा म आध्यात्मिक अभिव्यजना रखी है । सारी कथा के पीछे सूफी सिद्धान्तो की रूपरेखा है ।'[5] कवि ने पद्मावत में प्रम माग उसका महत्व और प्रेम माग की बाधाओ का स्थान स्थान पर वणन किया है । जिसका वणन हम परवर्ती परिच्छेदो मे करेंगे । जायसी मे आध्यात्मिक प्रेम की यह व्यजना हम तीन रूपो म प्राप्त होती है—(१) रूपक द्वारा (२) कथा प्रसगो म अलौकिकता की ओर सकत द्वारा और (३) सूफी मत क अनुकूल प्रेम की व्यजना द्वारा । यहाँ क्रमश इन पर विचार किया जा रहा है--

(१) रूपक द्वारा आध्यात्मिक प्रेम की व्यजना

'पद्मावत' म कवि ने रत्नसेन और पद्मावती की साधारण लौकिक कथा द्वारा आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक मिलन की व्यजना की है । रत्नसेन को साधक और पद्मावती को ईश्वर के रूप मे चित्रित किया है और इस प्रकार बतलाया है कि रत्नसेन को पदमावती तक पहुँचाने वाला प्रेम जीवात्मा

---

१ हिन्दी का य के आलोक स्तम्भ–डा० शान्ति स्वरूप गुप्त प० १४

२ मध्यकालीन धम साधना–आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, प० २५५

३ जायसी ग्रन्थावली–आ० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ३०

४ हिन्दी प्रेमाख्यानक का य–डा० कमल कुलश्रेष्ठ, प० ३८१

५ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–डा० रामकुमार वर्मा प० ३११

को परमात्मा तक पहुँचाने वाला प्रेम है । प्रेम पथिक रत्नसेन में सच्चे साधक भक्त का स्वरूप दिखाया गया है । इस अप्रस्तुत अर्थ की व्यजना के लिए कवि ने 'पदमावत' के अन्त में एक सांकेतिक सूत्र दे दिया है । जो इस प्रकार है--

तन चितउर मन राजा की न्हा । हिय सिंघल बुधिपदमिनि चीन्हा ॥
गुरु सुआ जेइ पंथ देखावा । बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धंधा । बाँचा सोइ न एहि चित बँधा ॥
राघव दूत सोइ सतानू । माया अलाउदी सुलतानू ॥
प्रेम कथा एहि भाँति बिचारहु । बूझि लेहु जौ बूझ पारहु ॥"[1]

इस सूत्र के अनुसार तन रूपी चितौर गढ़ के मन रूपी राजा रत्नसेन को हियरूपी सिंघल में पद्मिनी ही ईश्वर से मिलाने वाली बुद्धि है जिसकी प्राप्ति का पथ बताने वाला ही रामन शुक गुरु है । राघव चेतन शैतान है जो प्रेम का उचित मार्ग न बताकर मन को इतस्ततः भ्रमित करता है । अलाउद्दीन माया का ही रूप है । अन्यत्र भी कवि ने आध्यात्मिकता के इस आरोप की घोषणा की है--

'कहा मुहम्मद प्रेम कहानी । सुनि सो ग्यानी भये ध्यानी ॥ [2]

कवि की ये उक्तियाँ प्रमाणित करती हैं, कि उसे अपने काव्य में आध्यात्मिक व्यजना अभीष्ट है ।

(२) कथा प्रसंगो मे अलौकिकता की व्यजना

प्रारम्भ मे ही यह कहा जा चुका है कि कथा के बीच-बीच मे जायसी प्रेम की अलौकिकता की ओर भी इंगित करते चलते हैं । इस प्रकार के स्थलो में अधोलिखित का उल्लेख विशेष रूपेण किया गया है । जिसमे प्रेमकथा की अलौकिकता और आलौकिक प्रेम की व्यजना स्पष्टरूपेण उभर कर सामने आती है—

(क) घटनाएँ--

(१) हीरामन शुक के मुख से पदिमनी का रूप वर्णन और संदेश सुनकर रत्नसेन का मूर्छित हो जाना ।

(२) रत्नसेन की सिंघल यात्रा ।

(३) रत्नसेन पदमावती मिलन ।

---

१ जायसी ग्रन्थावली–पृ० ३०१

२ वही, पृ०

(ख) वणन--

(१) 'सिंघलगढ़ वणन' जिसमे पदमावती का निवास स्थान सातवें खण्ड पर बतलाया गया है।

(ग) सवाद--

(१) 'सात समुद्र खण्ड' म राजा सुआ सवाद।

(२) 'पदमावती रत्नसेन भेट खण्ड' म पदमावती तथा सखियों की वार्ता।

इन प्रसगो मे से कुछ के उदाहरण द्रष्टव्य हैं--

"आवत जग बालक जस रोआ। उग्न रोइ 'हा ज्ञान सो खोवा'॥
हौं तो अहा अमर पुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ॥
केइ उपकार मरन कर कीन्हा। सकति हकारि जीउ हरि लीन्हा॥"[1]

रत्नसेन के बेसुध हो जान पर ध्यान (मूर्छितावस्था) मे उसे परम ज्योति के सामीप्य की जो आनन्दमयी अनुभूति हो रही थी, उपयुक्त पक्तियो मे उसीका वणन है। रत्नसेन का पदिमनी क ध्यान मे बेसुध हो जाना कह कर यहाँ कवि ने साधक भक्त की समाधि द्वारा ईश्वर सान्निध्य की सुन्दर अभिव्यजना की है।

'देखि मान सर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥
भा अधियार, रनि मसि छूटी। भा भिनसार किरिन रवि फूटी॥'[2]

इन पक्तियो म राजारत्नसेन के सातवें समुद्र म पहुँचने पर दुख की सारी छाया का घट जाना, आनन्द का प्रसार होना, सूय किरण का उदय होना, कहकर साधक का अपनी साधना के फल के निकट पहुँचना, तत्क्षण सारे सतापो और भ्रमो का दूर हो जाना और आत्मा का अपनी शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर होना व्यजित हुआ है। इनसे यह पूणरूपेण प्रमाणित होता है कि जायसी की प्रेम कथा म अलौकिक प्रेम की ही व्यजना है लौकिक प्रेम की नहीं।

(३) सूफीमत के अनुकूल प्रेम व्यजना

सूफीमत अन्धविश्वास प्रधान शुष्क इस्लाम धम की प्रतिक्रिया के रूप मे उदय हुआ था। इस्लाम धम की बौद्धिकता के बन्धन से अलग भावुक सूफियो ने एक ऐसे मत की प्रतिष्ठा की थी जिसमे अलौकिक भक्ति के साथ साथ लौकिक रति को भी महत्व प्रदान किया गया। किंचित्काल पश्चात लौकिक

---

१ जायसी ग्रन्थावली--पृ० ४९-५०

२ वही, पृ० ६७

रति के ही प्रति इनका लगाव रह गया और अलौकिक रति की भावना नाम मात्र को शेष रह गयी। रति भावना का सम्बन्ध सौन्दर्य और प्रेम से है। अतएव सूफीमत मे ईश्वर (हक) की कल्पना या तो सौन्दर्य के रूप में की गयी या प्रेम के रूप म। जायसी म इन दोनो रूपो का पूरा पूरा प्रभाव दिखायी पडता है। जिस सुविधा के लिए दो रूपो म रखकर देखा जा सकता है—(१) लौकिक सौन्दर्य वर्णन द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की व्यजना, और (२) प्रेम और विरह का व्यापक वर्णन।

(१) लौकिक सौन्दर्य वर्णन द्वारा अलौकिक सौन्दर्य की व्यजना

रूप सौन्दर्य ही सारी आख्यायिका का आधार है। अतएव जायसी ने पदमावती के रूप का बडा ही विस्तृत वर्णन किया है। यहाँ भी कवि लौकिक सौन्दर्य का चित्रण करते करते अलौकिक सौन्दर्य की ओर बढ जाता है। सूफी भावना के अनुरूप जायसी का सौन्दर्य चित्रण प्राय अलौकिक ही है। जायसी का समस्त नखशिख वर्णन अपना आध्यात्मिक अर्थ रखता है और इस रूप म प्रेम का मूलाधार यह अलौकिक रूप वर्णन जायसी की आध्यात्मिक प्रेम व्यजना को स्पष्टत प्रकट करता है। जिस प्रकार राजा रत्नसेन रानी पद्मावती के अपूर्व सौन्दर्य पर मुग्ध होता है, उसी प्रकार भक्त हृदय भी परमात्मा के सौन्दर्य पर मोहित होता है। रत्नसेन की मुग्धावस्था का चित्रण भी कवि ने उसी रूप मे किया है जिस प्रकार ब्रह्म के साक्षात्कार की स्थिति म भक्त की दशा होती है। पदमावत म पदमावती ईश्वर का प्रतिरूप है। उसका सौन्दर्य अपरिमेय है अलौकिक है और दिव्य है जिसके वर्णनमात्र से राजा की यह दशा हो जाती है

सुनतहि राजा गा मुरझाई। जानौं लहरि सुरुज कै आई॥"[1]

कवि ने इस अलौकिक रूप के साक्षात्कार की अनुभूति को जिस रूप मे चित्रित किया है वह भी ब्रह्म साक्षात्कार की अनुभूति से मेल खाती है और पाठको को सौन्दर्य की लोकोत्तर भावना म मग्न करने वाली है।

सौन्दर्य की लोकोत्तर व्यजना करने के लिए जायसी ने इस प्रकार के उपमानो को ग्रहण किया है जो अनन्त सौन्दर्य की ओर सकेत करते हैं। निम्नाकित पक्तियो म पदमावती के रूप वर्णन म सौन्दर्य की यह लोकोत्तरता द्रष्टव्य है—

कचन रेख कसौटी कसी। जनु घन मह दामिनि परगसी॥'[2]

---

१ जायसी ग्रन्थावली—पृ० ४०

२ वही पृ० ४१

जायसी के सौन्दर्य वर्णन की एक अन्य विशेषता है सौन्दर्य के सर्वव्यापी प्रभाव की कल्पना जिससे उसकी लोकोत्तरता प्रमाणित होती है। पदमावती के केश की कालिमा के प्रभाव से स्वर्ग और पाताल मे तिमिर छा जाता है। उसके नेत्रों की पुतलियों के डोलने से संसार डोलने लगता है और उसके मन्दमृदु हास से शुभ्र उज्ज्वल शोभा अनेक रूप धारण करके सरोवर के मध्य में फल जाती है—

'वेनी छोटि झार जो वारा । सरग पतार होइ अँधियारा ।।"[1]

+ + +

'नैन जो देखे कवल भये निरमर नीर सरीर ।
हसत जो देखे हस भए दसन जोति नगहीर ।।"[2]

पद्मावती के इस सौन्दर्य म एक विचित्र पवित्रता है एक अलौकिक आनन्द विधायक विशेषता है जिसके साक्षात्कार मात्र से अज्ञान का अन्धकार अदृश्य हो जाता है। जन्म जन्मान्तर के पाप धुल जाते हैं।

एक अन्य स्थान पर जायसी कहते हैं कि दीख पडने वाली, उस परम ज्योतिस्वरूप पदमावती की ज्योति स ही जगत् मे दीख पडने वाली ज्योतियाँ निर्मित हुई हैं। पदमावती के दाँतो की ज्योति से सूय, चन्द्र, नक्षत्र, रत्न, हीरे, माणिक्य, मोती आदि ज्योतिमय पदार्थों ने ज्योति प्राप्त की है।

"जेहि दिन दसन जोति निरमई । बहुतन्ह जोति जोति ओहि भई ।।
रवि ससि नखत दीन्ह ओहि जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ।।
जह जह विहसि सुभावहि हसी । तह तह छिटकि जोति परगसी ।।"[3]

इसी प्रकार चन्द्र और सूय पद्मावती के ललाट की चमक के कारण निर्मल हैं—

"ससि औ सूर जो निरमल तेहि ललाट की ओप ।"[4]

इसकी नासिका की सुगन्धि से ही पुष्प सुगन्धित हो जाते हैं—

अस वह फूल सुवासित भयउ नासिका वध ।
जेत फूल ओहि हिरकहि तिन्ह कह होइ सुगध ।।[5]

---

१ जायसी ग्रन्थावली—पृ० ४१
२ पद्मावत—वासुदेवशरण अग्रवाल सदन चिरगाँव, झाँसी प० ७५
३ पद्मावत—वासुदेव शरण अग्रवाल—प० १२१
४ वही प० ५९६
५ जायसी ग्रन्थावली—पृ० २१२

परमात्मा को परमसत्य, परमसत्ता मानने के अतिरिक्त सूफी यह भी मानते हैं कि वह परम कल्याण और परम सौन्दर्य है। सूफी कहते हैं कि वह सष्टि दपण सदश है जिसमे उस परम सौ दय के गुण प्रतिबिम्बित होते हैं। फारसी के प्रसिद्ध सूफी कवि जामी की कविता म यह बात अत्यन्त सुन्दर ढग से कही गयी है। जामी की कविता मे कहा गया है कि तुम परम सत्ता हो और सभी कुछ मरीचिका मात्र है क्योंकि तुम्हारी सष्टि म सभी वस्तुएँ एक है। सम्पूर्ण सष्टि को मुग्ध करने वाला तुम्हारा सौ दय अपनी पूर्णता को प्रकाशित करने के लिये, हजारो दपणो प्रतिभासित होता है। लेकिन वह (सौन्दय) एक ही है।[1] पदमावती के इसी रूप का वणन जायसी निम्नांकित पक्तियो म करते हैं–

कहा मानसर चहा सो पाई। पारस रूप इहा लगि आई॥
भा निरमर त ह पायन परसे। पावा रूप रूप के दरसे॥
मल समीर बास तन आई। भा सीतल ग तपन बुझाई॥
\+ \+ \+ \+
बिगसे कुमुद देखि ससि रेखा। मैं तहि रूप जहाँ जो देखा॥
पाये रूप रूप जस चहे। ससिमुख सब दरपन होइ रहे॥
नन जो देखे कवल भए निरभर नीर सरीर।
हसत जो देख हस भए दसन जोति मगहीर॥[2]

उपयुक्त पक्तियो मे कवि ने बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का अत्यन्त सुन्दर निदशन किया है। पद्मावती बिम्ब है उसीका प्रतिबिम्ब जगत है अर्थात उसीकी प्रतिच्छाया से ससार के अन्य सब रूप बने हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सौन्दय के लोकोत्तर व्यजनार्थ जायसी ने जो उपमान प्रस्तुत किये हैं वे लोकोत्तर दिव्य सौन्दय की ओर इगित करते हैं।

(२) प्रेम और विरह का व्यापक वणन

सौन्दय की यही लोकोत्तर भावना प्रेम का मूलाधार है। इसीलिए सूफियो ने प्रम को अधिक महत्ता प्रदान की है। उनका कहना है कि प्रेम हृदय की माग है। वह पूर्णत्व की प्राप्ति का मधुर सस्थान है। हृदय को एक ऐसे परम

१ सूफीमत साधना और साहित्य डा० रामपूजन तिवारी, पृ० २५१ पर उद्धत।

२ पद्मावत पृ० ७४।

हृदय और व्यक्ति को एक ऐसे परम व्यक्ति की जरूरत महसूस होती है जिसके ससग म वह उस सीमा में आ जाना चाहता है कि वह अपने और अपने प्रेम के आश्रय के मध्य किसी दूसरे की उपस्थिति को सवथा अस्वीकार कर देता है। सूफियों को प्रियतम के गल का हार भी असह्य है। ऐसी दशा म अपन और प्रियतम के बीच किसी मध्यस्थ को व कस बर्दाश्त कर सकते हैं ? इस दशा मे बाहर भीतर सवत्र उसे प्रियतम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं दिखाई पडता। उसकी प्रवृत्ति सबकी उपेक्षा करक स्वच्छ द रूप स प्रियतम मे ही एका त भाव से सन्निविष्ट हो जाती है। इस प्रकार समस्त मानवीय मूल प्रवत्तियो म काम अर्थात रतिभाव सर्वाधिक व्यापक एव महत्त्वपूण है। रति और प्रीति नाम की दो भार्याए हैं।[1] जो क्रमश शारीरिक सुख और मानसिक परितप्ति की विधायिका हैं। इसस स्पष्ट है कि रति मे 'स्व सुखीभाव की तीव्रता होती है कि तु प्रीति म 'त सुखीभाव की प्रधानता रहती है। तात्पय यह है कि कामवासना ही परिष्कृत होकर प्रेम के प्राणोत्पादक मनोहर पुष्प के रूप म विकसित हो जाती है।[2] सूफियो के अनुसार यह प्रेम विरह विशिष्ट होता है। जायसी के प्रेम और विरह म इ ही व्यापक रूपो की अभिव्यक्ति हुई है। प्रेम का यह वणन दशनीय है—

सुनु धनि ! प्रेम सुरा क पिए। मरन जियन उर रहै न हिए।
\+ \+ \+ \+
सो प जान पिय जो कोई। पीन अघाइ जाइ परि सोई॥
रातिहु दिवस रहै रस भीजा। लाभ न देख न देख छीजा॥"[3]

इस प्रेम से छक कर वह जगत की ओर कुछ नही दखता। जब दखता है तब उसी परम प्रियतम को—

परगट गुपुत सकल मह पूरी रहा सो नाव।
जह देखो तह ओही दूसर नाहि जह जाव॥[4]

सूफी मत मे अह भाव को साधक के लिए सबसे बडा शत्रु कहा गया है और उस पर विजय पाने की बात कही गयी है। जिसस 'तू' और 'मैं' का भाव समाप्त हो जाय—

हौ हौ कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहि आहि सब कोई॥

---

१ 'कामस्य द्वे भार्ये रतिश्च प्रीतिश्च'—
२ वही
३ जायसी ग्र थावली पृ० १४१।
४ वही, पृ० १०५।

आपुहि गुरू सो आपुहि चेला । आपुहि सब औ आपु अकेला ॥ [१]

इसके लिए प्रेम ही एकमात्र साधन है । जायसी कहते हैं कि तीनो लोक और चौदहो भुवन में प्रेम के अतिरिक्त कुछ भी सुन्दर नही है–

तीनि लोक चौदह खंड सब पर मोहि सूझि ।
प्रेम छाडि किछु और न लोना जो देखौ बूझि ॥[२]

यह प्रेम का खेल अत्यन्त कठिन और दुखदायी होता है लेकिन जो इस खेल को खेल लेता है वह दोनो लोको में तर जाता है–

"सबेहि पेम है कठिन दुहेला । दुइ जग तरा पेम जेइ खेला ॥ [३]

इस प्रेम के द्वारा ही वह ऐसे लोक को प्राप्त कर सकता है जहाँ न मृत्यु है न दुख—

तिन्ह पावा उत्तिम कबिलासु । जहा न मीचु सदा सुख तासू ॥' [४]

जायसी की निम्नलिखित पंक्ति में कहा गया है कि दुख के भीतर ही प्रेम का मधु है । जो दुख और मरण को सहता है, वही उसका रसास्वादन कर सकता है–

दुख भीतर जो प्रेम मधु राखा । गंजन मरन सहै सो चाखा ॥' [५]

कबीर की अधोलिखित पंक्तियो से इसकी तुलना की जा सकती है । कबीर कहते हैं–

कबीर हसणा दूरि करि करि रोवण सा चित्त ।
बिनु रोयां क्यूं पाइए प्रेम पियारा मित्र ॥" [६]

विरह को भी जायसी ने इसी रूप में चित्रित किया है । जायसी के अनुसार प्रेम मे अपार विरह होता है । उसके ताप से स्वर्ग और पाताल भी जलते हैं । सूर्य विरहाग्नि मे जल कर ही काप रहा है । और अहर्निशि जलता रहता नक्षत्र और तारिकायें भी उसी की विरहाग्नि मे विदग्ध होती हैं–

'विरह कै आगि सूर जरि कापा । रातिहि दिवस जर ओहि तापा ।
सिनहि सरग खिन जाइ पतारा । थिर न रहै एहि आगि अपारा ॥' [७]

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ९३ ।
२ वही पृ० ३९ ।
३ वही पृ० ४० ।
४ वही, पृ० ६२ ।
५ वही, पृ० ४० ।
६ कबीर ग्रन्थावली, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७ ।
७ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ७८ ।

आचाय रामचद्र शुक्ल जायसी के विरह के विषय म लिखते हैं कि–'जायसी का विरह वणन कही कही अत्यत अत्युक्तिपूण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाता है। उसम गाम्भीय बना हुआ है। इसकी अत्युक्तियाँ बात की करामात नही जान पडता, हृदय की अत्यत तीव्र वेदना के शब्द सकेत प्रतीक होती है।"[1]

सूफियो का विश्वास है कि भगवान ही प्रेम है और अपन आनन्द के लिए वह उस मानव मानस मे उत्पन्न करता है। अपने प्रेमियो म अपने ही लिए वह प्रेम को धरोहर का तरह रख छोडता है। इस प्रेम को प्राप्त कर प्रेमी और प्रमास्पद दोनो ही सतुष्ट हाल हैं। प्रेम क माध्यम से प्रेमी साधक के हृदय की वासनाए समाप्त हो जाती हैं और उनके अन्तद्व द्व समाप्त हो जाते हैं। वह अपने माग म अग्रसर होता है और उसे परमात्मा के दशन हो जाते हैं। उस समय उसके प्रेम की व्याकुलता चरम सीमा पर पहुच जाती है। इस प्रकार हम देखत हैं कि सूफी साधना का आदि भी प्रेम में ही होता है और उसकी परिणति भी प्रेम मे ही होती है। इस प्रेम म विरह की वेदना और प्रम का आनन्द भी शाश्वत बना रहता है। सूफियो के प्रेम की पीर' यही है। जायसी ने बराबर इस विरह और प्रेम के पीर की चर्चा की है। यह विरह और पीर सूफी साधको का सम्बल है। वे मानते हैं कि परमात्मा से मिलन की यह व्याकुलता समस्त प्रकृति मे परिव्याप्त है।

"प्रेमहि माह विरह औ रसा। मैन के घर मधु अमित बसा।"[2]

जिस प्रकार मधुमक्खी के छत्ते म शहद और मक्खी दोनो ही होते हैं उसी प्रकार परमात्मा के प्रेम में आनन्द और माधुय दोनो ही हैं। सदैव विरह-व्याकुलता तथा मिलन की उत्कट अभिलाषा भी है। रत्नसेन की दशा का वणन करते हुए जायसी कहते हैं–

जेहि क हिये पेम रग जाया। का तेहि भूख नीद विसराया॥
बन अधियार रनि अधियारी। भादों विरह भएउ अति भारी॥[3]

साथ ही प्रेमी को विरह के ताप से जलते हुए आजन्म उस प्रेम का निर्वाह करना होता है उसके लिए भी और अन्य नाम की कोई वस्तु नही रह जाती। उसे सुख दुःख की परवाह नहीं होती है। जायसी कहते हैं–

१ जायसी ग्रन्थावली भूमिका भाग पृ० ३६।
२ वही पृ० ७१।
३ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५८।

'कठिन वियोग जोग दुख दादू । जरतहि मरतहि और निवाहू ।
डर लज्जा तह दुओ गवानी । देख कछु न आगि नहीं पानी ॥'[१]

इस प्रकार जायसी न जागतिक समस्त व्यापारो को प्रेम के आध्यात्मिक स्वरूप की छाया के समान ही दिखाया है । वियाग पक्ष मे भी वही वियोग अलौकिक रूप म सष्टि व्यापी प्रभाव के साथ चित्रित किया गया है । विरह के शुद्ध भाव लोक में अग्नि पवन इत्यादि सब उस प्रिय (ईश्वर) तक पहुचने के लिए व्यक्त दिखायी पडते हैं । सारी सष्टि उसी परम तत्व म लीन हान के लिए विह्वल रहती है और अन्तत उसी मे विलान हो जाती है ।

जायसी की आध्यात्मिक प्रेम व्यजना का मूल्याकन

जिन तीन रूपो—रूपक द्वारा, कथा प्रसगा म अलौकिकता की ओर सकेत द्वारा और सूफी मत के अनुकूल प्रेम व्यजना द्वारा—क माध्यम से जायसी ने अलौकिक प्रेम की व्यजना की है पदमावत के सम्पूण प्रेम वणनो म आध्यात्मिकता का आरोप नही किया जा सकता । जायसी ने जो रूपक कोश दिया है, वह पद्मावत की कथा पर पूणरूपण चरितार्थ नही होता है क्योकि पद्मावती (बुद्धि का) और नागमती (दुनिया धधा का) विरोधी प्रवत्तियो का प्रतीक हान पर भी अन्त मे दोनो ही रत्नसन के साथ चिता म जल कर भस्म हा जाती है । पदमावती को परमात्मा मानन पर कथा क अधिकाश प्रसग अनुपयुक्त लगने लगते है । जहाँ तक कथा प्रसगो के मध्य में अलौकिकता के सकेत का प्रश्न है, वे प्रसग पदमावत के पूर्वाद्ध क ही हैं । उत्तराद्ध से उनका काई सम्बन्ध नही है । प्रम और विरह का व्यापक वणन तथा लौकिक सौन्दय वणन द्वारा अलौकिक सौन्दय की व्यजना भी आशिक रूप मे ही हुई है । नागमती के विरह वणन तथा सयोग श्रृगार के अनेक प्रसगो मे अलौकिकता की छाया भी नही प्राप्त होती है । इस सम्बन्ध म डा० रामकुमार वर्मा का कथन महत्वपूण है । जायसी ने अपने पदमावत की कथा में आध्यात्मिक अभिव्यजना रखी है पर जायसी इस आध्यात्मिक सकेत को पूण रूप से नही निबाह सके और अधिकाश म 'पदमावत मे चित्रित प्रेम का स्वरूप अलौकिक न होकर लौकिक हा गया है ।'[२]

'पदमावत मे चित्रित प्रम की लौकिकता का निदशन प्रस्तुत करने के

१ जायसी ग्रन्थावली प० ६० ।

२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास रामकुमार वर्मा पृ० ३११ ।

लिए उसके कुछ स्थलो की ओर सकेत करना पर्याप्त होगा। जहाँ तक प्रारम्भ में प्रेम के अनुभूति का प्रश्न है वह लोकोत्तर लगती है परन्तु उसके बाद पदमावती रत्नसेन के मिलन प्रसगो से लेकर अन्त तक प्रेम का जो स्वरूप दिखाया गया है वह लौकिक प्रेम से भिन्न नही है। फारसी शैली और भाव भगिमाओ के प्रभाव से प्रेम प्रसगो मे कवि ने वासना के विविध चित्र अकित किये हैं और कही कहीं तो उसकी लेखनी शृगार के अत्यधिक विलासमय वणन प्रस्तुत करती है। एक चित्र द्रष्ट य है–

'तस होइ मिले पुरुष औ गोरी। जस बिछुरी सारस जोरी ॥
रची सारि दूनौ इक मामा। होइ जुग जुग आवहिं कविलासा ॥
पिय धनि गही दीन्ह गलवाही। धनि बिछरी लागी उमराहीं ॥
स छकि नवरस केलि कराही। लोका लाइ अधर रस लेही ॥"

इस चित्र मे वणित प्रेम लौकिक प्रेम के चित्र से किसी भी प्रकार अलग नही किया जा सकता। पद्मावती युवावस्था को प्राप्त होते ही तोते से कहती है–

"सुनि हीरामन कहौं बुझाई। दिन दिन मदन सतावै आई ॥
जोवन मोर भयउ जस गगा। देह देह हम लोग अनगा ॥[२]

रत्नसेन के सिघलगढ म पहुचने के पश्चात भी पदमावती को कामवासना एव भोग लिप्सा म विह्वल युवती के रूप म दिखाया गया है। उससे स्पष्ट है कि पदमावती का प्रेम सवथा लौकिक स्तर का है। उसी को देखते हुये डा० विमल कुमार जन न लिखा है। पदमावती की कथा म जो नखशिख वणन प्रेमावेग तथा ऐसी ही अन्य बातो का वणन है उसम आध्यात्मिक पक्ष को कुछ धक्का सा लगता प्रतीत होता है।'[३] इस प्रकार जायसी के सयोग वणन में यदि शारीरिक उल्लास का मादक वणन आध्यात्मिक प्रेम को आघात पहुँचाता है तो उनका वियोग वणन भी (विशेषत नागमती का विरह चित्रण) इतना लौकिक और मानवीय है कि उसे आध्यात्मिक नही कहा जा सकता। डॉ० रामकुमार वर्मा के शब्दो में "इतना कि तो ठीक है कि रत्नसेन और पद्मावती का मिलन होता है जहाँ तक कि खुदा और बन्दे का एकीकरण है पर जहाँ रत्नसेन और पद्मावती के अश्लीलता की सीमा को

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १४०।
२ वही पृ० २१।
३ हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य डॉ० विमलकुमार जन, पृ० २८१

स्पर्श करता हुआ शृंगार वर्णन है, वहाँ आध्यात्मिकता को किस प्रकार घटित किया जा सकता है।'[1] अतएव जिस प्रकार सागर की एक दो लहरें पूरे सागर का प्रतिनिधित्व नहीं करती उसी प्रकार, कुछ प्रसंगों में अलौकिक प्रेम की व्यञ्जना होने पर भी 'पद्मावत' को अलौकिक प्रेमकाव्य नहीं कहा जा सकता। वह लौकिक प्रेमकाव्य नहीं कहा जा सकता। वह लौकिक प्रेम काव्य ही है। आगे जायसी की लौकिक प्रेम व्यञ्जना के विवेचन से इस कथन की पुष्टि स्वयमेव हो जायगी।

जायसी के प्रेम चित्रण को लौकिक मान लेने पर भी उसका महत्त्व कम नहीं होता। यह अपने लौकिक रूप में भी प्रेमी में त्याग एवं उत्सर्ग का भाव जगाने वाला है। यह उत्कट प्रेम प्रेमी को न जीने देता है न मरने देता है—

कठिन मरन ते प्रेम बिवस्था। ना जिउ जिए न दसय अवस्था।।[2]

कबीर ने भी इसी प्रेम के लिए कहा—

प्रेम छिपाया ना छिपै जा घट परगट होय।
जो प मरव बाल नहीं नैन देत हैं रोय।।[3]

यही प्रेम रत्नसेन का है। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रेम कामजनित है परन्तु कामजनित होने पर भी प्रेम में इतनी तीव्रता असाधारण वस्तु है। एक स्त्री के लिए माता के ममतापाश को अपरिपक्व धागे की भाँति तोड़कर इतस्तत बन-बन में भटकना सात समुद्र पार कर जाना हिंसा शस्त्र के बल पर नहीं प्रत्युत अहिंसा और प्रेम के अस्त्र के बल पर अपरिचित देश में जाकर स्पष्ट कहना कि—

'पद्मावत राजा की बारा। हौं जोगी ताहि लागि भिखारी'[4]

रत्नसेन का वर्षा आतप एवं शीत का अनुभव करते हुए प्रेम में योगी बनकर सारे राजकीय सुखों का परित्याग करना अपने आप में महत्त्व रखता है। वह लौकिक प्रेमी धन्य है जिसका प्रेम इस प्रकार का है।

इस प्रकार के प्रेम का उद्देश्य, जायसी की दृष्टि में दो जीवनों का एकीकरण है। यह एकीकरण उद्वाह की संस्था द्वारा सम्पादित किया जाता है

---

१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डा० रामकुमार वर्मा पृ० ३११।

२ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४९

३ कबीर ग्रन्थावली पृ० ३०

४ जायसी ग्रन्थावली पृ० ९४

परन्तु उद्वाह का कोई भी प्रभाव इस प्रेम पर नहीं पडता। पद्मावती विवाह पूर्व ही रत्नसेन की शूली का समाचार सुनकर संदेश सम्प्रेषित करती है कि 'यदि तुम जीवित रहोगे तो म भी तेरे साथ जीवन धारण करूँगी और यदि तुम न रहे तो म भी नहीं रहूँगी। मैं अपने प्राणों को हथेली पर लिये प्रतीक्षा कर रही हूँ—

'काढि प्रान बठी लेइ हाथा। मरे तो मरौं जिओं एक साथा॥'[1]

इतना ही नहीं प्रत्युत् विवाहोपरान्त भी वह लक्ष्मी से कहती है कि तुम मुझे उसी घाट की ओर प्रवाहित कर दो, जहाँ पर मेरे प्रियतम हैं। मेरे लिये तुम अग्नि प्रज्वलित कर दो। मैं जलकर मर जाना चाहती हूँ। सारस की जोड़ी बिछुड कर कदापि जीवित नहीं रह सकती—

"बाउरि होइ परी पुनि पारा। देहु बहाइ कत जेहि धारा।

को मोहिं आगि देइ रचि हारी। जियत न बिछुर सारस जोरी॥[2]

रत्नसेन के बंदी बन जाने पर वह गोरा-बादल से कितने विनय स्वर मे कहती है कि दुख का वृक्ष ऐसा बढ गया है कि रोके नहीं रुकता। उसकी जड पाताल, में और शाखाएँ आकाशगामी हो गयी हैं। उसकी छाया सारी पृथ्वी पर फैल गया है। विरह की बेलि खजूर जसी ऊँची हो गयी है। जायसी कहते हैं—

'दुख बरखा अब रहै न राखा। मूल पतार, सरग भइ साखा॥

छाया रहा सकल महि पूरी। बिरह बेलि भइ बाढि खजूरी॥'[3]

सूर्य को ग्रहण ने ग्रस लिया है। अब कमल क्या करे। मैं भी वहीं जाऊगी जहाँ प्रियतम गये हैं—

सूरज गहन गरासा कँवल न बैठ पाट।

महू पथ तेहि गवनव कंत गये जेहि बाट॥'[4]

और जिस प्रकार जलते हुए लाक्षागृह में साहस करके भीम प्रविष्ट हुए थे और प्रविष्ट होकर उन्होंने रक्षा की थी तुम भी वैसा ही करो—

जग जरत सभा घर माहस कीन्हा भाउ।

जरत खम्भ तस काढहु क पुरुषारथ जाउ॥[5]

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ११३
२ वही, पृ० १७७
३ वही, पृ० २८०
४ वही पृ० २८०
५ वही, पृ० २८१

विवाहोपरान्त रत्नसेन लक्ष्मी के छल पर कहता है कि मैं भ्रमर हूँ मालती पुष्प को गध से ही पहचान लेता हूँ–

'मैं हौं सोइ भवर औ भोजू। लेत फिरौ मालित कर खोजू ॥'[1]

तुम क्या रुदन कर रही हो। तुममे वह रूप तो है परन्तु गन्ध तो नहीं है––

'का तुइ नारि बठि अस रोई। पूलसोइ पै वास न सोई ॥'[2]

और मै तो सुगन्ध पर मरने वालों म हूँ। किसी दूसरे पुष्प की ईहा ही नही रखता––

'हौं ओहि वास जीउ वलि दऊ। और फूल क वास न लेऊ ॥'[3]

विवाह के पूव भी उसन पावती से कहा था कि अप्सरे! माना कि तुम्हारा रूप अतीव रमणीय है किन्तु मुझ तो दूसरे से वार्ता भी अच्छी नही लगती––

"भलेहि रग अछरी तोर राता। मोहिं दुसर सो भाव न वाता ॥

मैं स्वग की भी कामना नही करता। म जिसके लिए मरता हू वही मेरे लिये स्वग है––

'हौं कविलास काह क करऊ? सोइ कविलास लागि जेहि मरऊ ॥'[5]

इससे पूणरूपेण स्पष्ट है कि प्रम की तीव्रता पर विवाह का कोई भी प्रभाव नही पडा। उसकी शिखा पूववत जल ही रही है और प्रेमी तथा प्रेमिका एक अनन्य भाव से परस्पर प्रम कर रहे हैं।

यह प्रेम एकान्तिक है। इसका लक्ष्य भी प्रेम ही है कुछ और नही। यह दो व्यक्तियो का एक कर देने वाला प्रेम है। यह अनय प्रेम है। यह इतना उत्कट और गहन है कि प्रेमी को जीवन के सारे स दर्भों स काट देता है। एकान्तिकता इसका गुण है दोष नही।

प्रेम की इसी अनन्यता का वणन जायसी ने किया है। रत्नसन कहता है कि जिसका मन जिसमे बसता है वह उसी का आश्रय ग्रहण करता है। स्वण और सुहागा मिलकर एक–दूसरे स अलग नही होते वरन तद्रूप हो जाते हैं––

१ जायसी ग्र थावली, पृ० १८३
२ वही, प० १८३
३ वही प० १८३
४ वही, प० ९१
५ वही प० ९१

प्रेम पथ मे इस प्रेम म और नायिकारब्ध प्रम मे कोई अन्तर नही है। दोनो प्रेम समान स्तर पर रखे गये हैं। नागमती स रत्नसेन कहता है—

'नागमती तू पहिल बिआही। कठिन बिछोह दहै जनु दाही॥
बहुत दिन पै आव जो पीऊ। धनि न मिल धनि पाहन जीऊ॥'[1]

इसको म प्रम की प्रगाढता नही मानता। कारण कि अन्यत्र अनुरक्त नायक यदि अपनी पत्नी को इस प्रकार की उक्तियो से सतुष्ट करना चाहता है और अपनी कामना की तृप्ति चाहता है तो वह प्रम नही है। एकमात्र व्याज है। रत्नसेन के कथन से ज्ञात होता है कि वह किसी अबोध बाला को फुसला रहा है। हाँ यह अवश्य है कि प्रत्येक उद्वाहिता नारी विवश प्यार देती है और प्रत्येक उद्वासित पुरुष विवश प्यार पाता है। निश्छल प्यार केवल वही नारी दे सकती है जो प्रयसी होती है। जो कुछ भी हो नागमती का सारा रोष समाप्त हो जाता है और नागमती हँसि पूछी बाता।[2]

इस प्रकार नायक और प्रतिनायिका के प्रम को निम्नस्तरीय प्रम नही माना गया है। हा, यह अवश्य है कि उनमे सघष को स्थान भी नही दिया गया है। इस प्रकार स वह पाठक क मन पर अपनी उज्ज्वल आभा विकीर्ण नही कर पाता जो कि नायिकार ध प्रेम डालता है।

जायसी न प्रतिनायक द्वारा नायिका क प्रति प्रेम प्रकट करने और उसे प्राप्त करने की चेष्टा का भी विस्तारपूवक वणन किया है। अलाउद्दीन का पद्मावती को प्रा त करने का प्रयत्न ऐसा ही है।

आचाय रामच द्र शुक्ल न प्रतिनायक (अलाउद्दीन) क प्रेम को रूप लोभ की सना दी है।[3] इसके विपक्ष म (क) पद्मावती का परविवाहिता होना तथा (ख) अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न करना'–ये दो अनुचित काय बताये हैं। जिनके कारण उसके 'प्रम को प्रेम नही कहा जा सकता। डा० माताप्रसाद गुप्त ने स्व सम्पादित पद्मावत मे इन दोना अनौचित्यो पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया ह कि भारत म इन दोना भावनाओ को अनुचित समझते हुए भी सामायत सूफी साधना से ये विरद्ध नही पडती।"[4] उनके विचार मे सूफी साधना का चरमोद्देश्य विरहानुभूति है। उसके अभाव म अलाउद्दीन को भी प्रेमी का स्थान प्रदान नही किया जा सकता। इन सूफी कवियों की दृष्टि

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १८९
२ वही पृ० १९०
३ वही, पृ० ३३ (भूमिका भाग)
४ पद्मावत डॉ० माताप्रसाद गुप्त पृ० ४६–४९

मे जब तक कोई भी प्रेम का दम भरने वाला दुख की कांवरी नही ढोता और दोनों जगत के सुख 'उस दुख पर' न्योछावर करने को प्रस्तुत नही होता, वह प्रेमी नहीं है। रूप लोभी है। कामी है छली है। अलाउद्दीन वही है और इसीलिए रत्नसेन से भिन्न है।'[1]

डॉ० माताप्रसाद का यह समाधान साम्प्रदायिक माना जा सकता है परन्तु सम्पूर्ण प्रेमाख्यानक काव्यधारा की पृष्ठभूमि में आचार्य शुक्ल के दोनो विचार सबल हैं। प्रेम मार्ग अहिंसा का मार्ग है। छल कपट अथवा कमनस्य का भाव इसकी पवित्रता समाप्त कर देता है। प्रतिनायक का महत्व अहिंसा मार्ग को न अपनाने के कारण है। उसके प्रेम में केवल ग्रहण का आग्रह है त्याग का नही। प्रतिनायक और प्रतिनायिका के बीच जिस प्रेम का विकास जायसी करते हैं वह दूसरे प्रकार का है। जिस पद्मावती को रत्नसेन ने योगी का वेश धारण कर सात सात समुद्रों को पार कर जीवन की बाजी लगाकर प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की थी, उसी पद्मावती को अलाउद्दीन तलवार के जोर से प्राप्त करना चाहता है। अलाउद्दीन का दूत कहता है--

बोलु न राजा ! आप जनाई । लीन्ह देवगिरि और छिताई ॥'[2]

उसका सुनकर रत्नसेन के मन्यु की सीमा नही रहती। परन्तु जब अलाउद्दीन विनय के स्वर में सधि के निमित्त कहता है तो रत्नसेन इस दुष्ट व्यक्ति को अपने प्रासाद में ठहरा लेता है और दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब दिखाने के लिये सहमत हो जाता है। प्रतिनायक के हृदय में नायिका के लिये वह प्रेम नही रहता जो परम त्याग एवं कष्ट सहिष्णुता में परिपूर्ण हो। उसमें प्रेमी तलवार द्वारा हृदय जीतने का प्रयत्न करता है। जो सफलीभूत नही हो सकता है। यह प्रेम नही है। सच्चे प्रेम में तो अहिंसा योग विनय दीनता आदि का विशेष महत्व है। जिसका स्पष्टीकरण प्रतिनायक और नायिका के प्रेम द्वारा कवि ने कर दिया।

वस्तुत प्रतिनायक के प्रेम का चित्रण नायक के प्रेम को उत्कर्ष देने का एक माध्यम है। प्रतिनायक के आचरण के अनौचित्य को देखकर नायक के आचरण की उच्चता का बोध होता है। अत पद्मावत में अलाउद्दीन का प्रेम जो निश्चय ही रूप लोभ है रत्नसेन के प्रेम की दिव्यता उज्ज्वलता और

---

१ पद्मावत डा० माताप्रसाद गुप्त पृ० ४९

२ पद्मावत प० २१९

जनहुँ छाँह मह धूप देखाई । तसह झारि लागि जो आई ।
सही न जाइ सवति क झारा । दुसरे मदिर दीन्ह उतारा ॥"[1]

और एक दिन--

'वह ओहि कह वह ओहि कह गहा । कहाँ तस जाइ न कहा ।
दुवौ नवल भारी जोवन गाज । अछरी जनहु अखारै बाजै ।
भा बाहुन बाहुन सो जोरा । हिय सो हिय कोइ बाग न मोरा ॥[2]

परन्तु एक ही प्रियतम से प्रेम क कारण दोना ही शात हो जाती हैं और अन्त तक सदभाव एव स्नेह के साथ रहती हैं। अन्तत कवि ने इस प्रेम के स्वरूप को आदश परिणति दे दी है।

जायसी मे लौकिक प्रेम की व्यजना श्रृ गार वणन

जसा कि ऊपर कहा जा चुका है जायसी का पदमावत प्रमकाव्य है। कवि ने रत्नसेन और पदमावती के प्रेम प्रसगो मे लौकिक प्रेम की मार्मिक और रसात्मक व्यजना की है। यदि रस के विभिन्न उपादानो की दृष्टि से जायसी के काव्य की विवेचना की जाय तो हम उनकी रस योजना पर मुग्ध हुए बिना नही रह सकते। सुविधा के लिए यहाँ श्रृगार के दोनो पक्षो--सयोग एव वियोग की दष्टि से पदमावत पर पृथक पथक विचार किया जा रहा है।

जायसी का सयोग श्रृगार वणन

जायसी म सयोग श्रृगार के प्रसग पदमावती और रत्नसन को लेकर घटित हुए हैं। उनमें आलम्बन आश्रय तथा रस के अन्य अगो की सम्यक योजना पायी जाती है। आलम्बन का वणन पदमावत का विशिष्ट आकषण है। कवि ने इस दष्टि से पद्मावती के रूप सौन्दय की मोहक झाँकी प्रस्तुत की है। पीछे सौन्दय की लोकोत्तर व्यजना के प्रसग मे जायसी के सौन्दय वणन के कुछ गुणो--सष्टि व्यापी प्रभाव लोकोत्तरता पवित्रता आदि की विवेचना की जा चुकी है। लौकिक दष्टि से जायसी के आलम्बन चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि कवि का ध्यान सदव सौन्दय को अपन चरम रूप म व्यक्त करने की ओर रहा है। इसीलिए जायसी ने पदमावती को रूप राशि के वणन म सष्टि के सुदर उपादानो को लाकर उपमान के रूप मे प्रस्तुत किया है। अनुभूति की तीव्रता और उत्कष मे अधिक स अधिक समथ उपादानो का चयन जायसी की विशेषता है। अधोलिखित पक्तियो म यौवन के

१ जायसी ग्रथावली पृ० १८८
२ वही प० १९६

भार से झुकी किशोरी पदमावती के अग प्रत्यगो का मनमोहक और ललित वणन दर्शनीय है--

'भ अनन्द पदमावति बारी । रचि रचि विधि सब कला सवारी ।
जग बेधा तेहि अग सुवासा । भवर आइ लुबध चहु पासा ॥ '[1]

शृगार के सयोग पक्ष म प्रेमाश्रय का वणन भी जायसी ने किया है। सौन्दय के प्रभाव क प्रसग मे पीछे पदमावती के रूप सौ दय का वणन सुनकर रत्नसेन की मुग्धावस्था का चित्र दिया जा चुका है। जायसी ने इसके अतिरिक्त भी रत्नसन की अवस्था का वणन किया है। निम्नलिखित पक्तियों मे आश्रय रत्नसन की प्रणय भावना की अभिव्यक्ति दष्टव्य है--

'फूल फूल फिरि पूछा जो पहुँची ओहि केत ।
तन निछावर क मिलौं ज्यो मधुकर जिय न्त ॥ '[2]

जिस प्रकार बारहमासा विप्रलम्भ के उद्दीपन की दष्टि से लिखा गया है, उसी प्रकार पद ऋतुवणन सम्भोग शृगार के उद्दीपन का दष्टि से।"[3] राजा रत्नसेन के साथ सयोग होन पर पदमावती का पावस ऋतु की शोभा का कसा अनुभव हो रहा है उसका चित्र अधोलिखित पक्तियो म दशनीय है--

पदमावति चाहत ऋतु पाई । गगन साहावन भूमि साहाई ।
चमक बीजु बरस जल सोना । दादुर मोर सबद सुनि लोना ।
रङ्गराती पीतम सग जागी । गरजे गगन चौंकि गर लागी ।
सीतल बूद ऊच चौपारा । हरियर सब दखाइ ससारा ॥

नागमती का जो बूदें विरह दशा म बाण की तरह विन्दघ करती हैं, पद्मावती को सयोग दशा म व ही बूदें कौंध की चमक म सोने की सी लगती हैं। इसी के समानान्तर सूरदास की भी उक्ति का उदाहृत करना असमीचीन न होगा निसिदिन बरसत नन हमारे मनुष्य के आन द या दु ख के रङ्ग मे रजित प्रकृति का ही जायगा । दगा है स्वतन्त्र रूप म नही।

सयोगानुभतिया प्रेमभाव की रसात्मक व्यजना

प्रेमभाव का जो उत्कष जायसी क पदमावत म पाया जाता है वह अनुपम है अद्वितीय है। कवि ने सयोग का बडा ही मधुर और मादक, परन्तु

१ जायसी ग्रन्थावली प० २०
२ जायसी ग्रन्थावली प० ५१
३ वही, (भूमिका भाग) पृ ४९
४ वही प० १४९

भावपूर्ण वर्णन 'पद्मावत' में किया है । प्रथम मिलन के पश्चात्, संभोग माधुरी का एक उल्लासपूर्ण वर्णन देखते ही बनता है—

"करि सिंगार तापहं का जाऊं । ओही देखहु ठावहि ठाऊं ।
जो जिनु महं तौ उहै पियारा । तन मन सौं नहि होइ विचारा ।
नन माह है उहै समाना । देखौ तहाँ नाहि कोई आना ।।"[1]

इन पंक्तियों में रानी पद्मावती ने जिस मानसिक उल्लास का वर्णन किया है वह प्रियतम के प्रति असीम स्नेह और समर्पण की भावना पूर्णरूपेण परिपूर्ण है ।

जायसी के संयोग वर्णन में मन के स्वाभाविक उल्लास, अभिलाषा पावन भावना उत्कंठा और प्रणयाविभोरता का चित्रण ही अधिक उपलब्ध होता है । भावों की इस सान्द्रता में कहीं कहीं शारीरिक उल्लास का मादन वर्णन भी मिलता है । ऐसे प्रसंगों में संयोग की बड़ी तीव्र और रससंकुल अभिव्यक्ति ही कवि का लक्ष्य रहा है । संयोग माधुरी के मादन वर्णनों की दृष्टि से विवाह खंड का एक उदाहरण लिया जा सकता है । 'पद्मावती' प्रसाद के ऊपरी अंग पर खड़ी है । नीचे बारात का अपरिमित सौंदर्य है—रत्नसेन वर रूप में दिखायी दे रहा है । पद्मावती इस सौंदर्य और साजबाज को देखकर मुग्ध हो रही है । उसका मन मयूर आन दातिरेक से नाच रहा है । हृदय सरोवर में कामना की चपल लहरियाँ, अठखेलियाँ कर रही हैं और रोम रोम अपूर्व उल्लास से सिहर रहा है । मानसिक उल्लास के साथ शारीरिक उल्लास का मादन, परन्तु काव्यात्मक वर्णन द्रष्टव्य है—

'हुलसे नयन दरस मदमाते । हुलसे अधर रंग रस राते ।
हुलसा वदन ओप रवि पाई । हुलसि हिया कंचुकि न समाई ।
हुलसे कुच कसनी बंद टूटे । हुलसी भुजा, वलय कर फूटे ।
+ + +
आजु चाँद घर आवा सूरू । आजु सिंगार होइ सब चूरू ।
आजु कटक जोरा है कामू । आजु विरह सौं होइ संग्रामू ।
अंग अंग सब हुलस, काहु कतहूँ न समाइ ।
ठाँवहि ठाँव विमोही, गइ मुरछा तनु आइ ।।[2]

कहीं कहीं शृंगार का नग्न और विलासपूर्ण वर्णन भी जायसी में मिलता

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १४३
२ वही' पृ० १२२-२३

है । यह फारसी शैली के प्रभाव के कारण भी है और कुछ परम्परा के अनुकूल भी ।

"सुनु, सनि ! प्रेम सुरा के पिये । मरन जियन उर रहे न हिये ।
जेहि मद तेहि कहाँ ससारा । की सो घूमि रह की मतवारा ।
सो पै जान पिय जो कोई । पी न अघाइ जाइ परि सोई ।
जाकह होइ बार एक लाहर । रहै न ओहि बिनु ओही चाहा ।
अरथ दरब सो देइ बहाई । की सब जाहु न जाइ पियाई ।। [1]

प्रेम के अन्तर्गत सयोग दशा से कही अधिक महत्व वियोग दशा को प्राप्त है । सयोग की कामना तो सामान्य लौकिक प्रेम मे भी उतनी ही तीव्र होती है, जितनी आध्यात्मिक प्रेम मे लकिन वियोग की तीव्रता प्रेम के निर्मल रूप का स्पष्ट करती है । सूफी प्रेमकाव्यों में सयोग से अधिक महत्व वियोग को प्राप्त है । वियोग प्रेम की कसौटी है । जायसी के वियोग वर्णन एव उसकी उदात्तता का मूल्याकन हम एक पथक अध्याय मे प्रस्तुत करना चाहेंगे ।

अनुभावो और सचारीभावो की योजना

शृगार के उभय पक्षो मे रस की सम्यक सष्टि के लिए अनुभावो और सचारी भावो की याजना अत्यावश्यक है । जायसी ने पदमावत म इनकी सुदर योजना की है । यह कथन किंचित उदाहरणो से पुष्ट किया जा सकता है । अधोक्ति पक्तियो म अग प्रत्यग के उल्लास का वणन दष्ट य है—

फरे सहस साखा होइ दारिउ दाख जभीर ।
सब पखि मिलि आइ जो लौटि उहै भइ भोर ।। [2]

निम्नाकित पक्तियो म मत्सरीभावा —उत्कण्ठा पश्चात्तापादि से समन्वित विरह की तीखी व्यजना दखत ही बनती है—

काहु हसो तुम मोसौ कियउ और सौं नह ।
तुम मुख चमके बीजुरी मोहि मुख बरस मेह ।।" [3]

जायसी की प्रेम व्यजना की विशेषताएँ

जायसी के प्रेमकाव्य म प्रेम के स्वरूप का विस्तारपूवक विवचन करने के बाद यहाँ तत्सम्बन्धी कुछ सामान्य विशेषताओ की चर्चा भी आवश्यक है । मुख्य रूपेण यहाँ तीन विशेषताओ का उल्लेख किया जा सकता है—(क)

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १४१
२ जायसी ग्रन्थावली पष्ठ १९०
३ वही, पृ० १८९

मानसिक पक्ष की प्रधानता (ख) भारतीय और फारसी पद्धतियो का समन्वय और (ग) भावात्मक और व्यावहारिक शलियो का समन्वय ।

(क) मानसिक पक्ष की प्रधानता

जायसी की प्रेम व्यजना मे मानसिक पक्ष की प्रधानता है । सयोग एव वियोग उभय पक्षो में उनकी दृष्टि भावात्मकता की ओर ही अधिक रमी है । शारीरिक काम वासना का चित्रण कम हुआ है । सयोगपक्ष मे कवि ने मन के उल्लास का और वियोग पक्ष मे वेदना का चित्रण अधिक किया है । यह कथन पूववर्णित विवेचन समर्पित हो जाता है । कवि ने जहाँ कहा शारीरिक भोग विलास का भी वणन किया है उनमें विलासिता के बीच बीच मे भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित होता दिखयी देता है । उनके विरह वणनो म एक गाम्भीय है और वेदना की अत्य त तीव्र व्यजना भी प्राप्त होती है ।

(ख) भारतीय और फारसी प्रेम पद्धतियो का समन्वय

भारतीय प्रेम पद्धति मे नायिका के प्रेम का वेग अधिक दिखाई देता है जबकि फारस के प्रेम मे नायक के प्रम का वेग तीव्र रहता है । जायसी ने अपने 'पदमावत' मे इन दोनो पद्धतियो का समन्वय किया है । पहले उन्होंने फारस की प्रेमपद्धति का अनुसरण करते हुए रत्नसेन को अपने प्रेमास्पद की प्राप्ति के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील दिखलाया है और फिर नायिका के प्रेमोत्कष का भी वसा ही चित्रण किया है । उत्तराध मे तो नायिका का प्रेम ही प्रधान हो गया है । इस प्रकार पदमावत की प्रेम व्यजना मे भारतीय और फारसी दोनो पद्धतियो का समन्वय हो गया है ।

सयोग और वियोग के विभिन्न प्रसगों के वणन मे भी इन पद्धतियों का समन्वय देखा जा सकता है । भारतीय पद्धति के अनुसार कवि सयोग शृगार म मर्यादित और वियोग वणन मे वेदना की अभिव्यक्ति की ओर झुका रहता है । परन्तु फारसी पद्धति के प्रभाव स वह सयोग वणन मे अश्लील, दृश्यो तथा वियोग मे ऊहात्मक उक्तियों का समावेश भी कर देता है । जस वियाग वणन म वीभत्सता की यह योजना दखी जा सकती है—

विरह सरागन्हि भूज मासू । गिरि गिरि परै रकत क आँसू ।
कटि कटि माँसु सराग पिरोवा । रकत क आँसु मासु सब रोवा ॥ [1]

(ग) एकातिक एव लोक सापेक्ष्य प्रेम पद्धतियो का समन्वय

पद्मावत की प्रेम व्यजना की एक अन्य विशेषता है—एकातिक और

---

१ जायसी ग्रथावली पृ० १६१

लोक सापेक्ष्य पद्धतियो का समन्वय । 'पद्मावत' म भारतीय प्रेम पद्धति के अनुसार लोक व्यवहार के बीच अपनी आभा का प्रसार करने वाल प्रेम और फारसो पद्धति के अनुसार मनस्वियो के ऐकान्तिक लोक बाह्य और स्वतन्त्र भावात्मक सत्ता के रूप मे विकसित होने वाले प्रेम– इन दोनो की समान रूप से व्यजना हुई है । 'पदमावत मे इसी सम वय के अनुरूप एक ओर पद्मावती और रत्नसेन और दूसरी ओर नागमती और रत्नसेन के प्रेम प्रसगों की अवधारणा भी है । अ त मे दोनो को दाम्पत्य जीवन म परिणति भारतीय प्रेम पद्धति की प्रधानता सूचित करती है ।

जायसी की प्रेम व्यजना इसके विवेचन से कवि की सम वय कारिणी प्रतिभा के साथ साथ मल भावधारा का जो परिचय हमे मिलता है, उससे यह पूण रूपेण स्पष्ट हो जाता है कि मूलत सूफी प्रेम की भावना से अनुप्राणित होने पर भी सभ। प्रेमाख्यानक का यो की भाँति जायसी के का य म भी भारतीय लौकिक प्रेम पद्धति का अनुसरण किया गया है । सभी प्रेमाख्यानो के समान पदमावत' का मूल स्रोत भी भारतीय लोक जीवन और लौकिक तथा व्यावहारिक प्रेम की प्रधानता रहा है और इसी माध्यम से उ होने अपनी प्रेम पीर' का सहज सरल और मनोरञ्जक निरूपण किया है । इस रूप में जायसी का पद्मावत भारतीय लौकिक प्रेमाख्यानक काव्यो की परम्परा का एक अमर कीर्ति स्तम्भ है ।

४ | विरह, प्रेम की कसौटी

बिरह-वणन मध्यकालीन कवियो का एक विशेष वण्यविषय रहा है। सच्चे प्रेम की परख विरहावस्था मे ही होती है। प्रिय के निकट रहने पर प्रतिदिन आनन्द की उदभावना तो होती ही है किन्तु नवनीत की सी स्निग्धता शुष्क होने लगती है। जीवन की इस शुष्कता एव भावो की कोमलता पर आच्छादित इसी आवरण को दूर करने के लिए विरह का आश्रय लेना पडता है। जिस प्रकार अग्नि म पडने के पश्चात ही सोने की परख होती है, उसी प्रकार वियोग की अग्नि में तपकर ही प्रेम अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट करता है। डा० हनुमानदास 'चकोर' विरह को प्रेम की कसौटी स्वीकार करते हुए कहते हैं। 'वियोग ही तो प्रेम का वास्तविक परीक्षक है जिसके प्रश्नोत्तर के पश्चात सच्चा परिणाम प्राप्त होता है। सच्चा प्रेम वह तप्त स्वण है जो अग्नि मे पडने के पश्चात मूल्यवान् बनता है।[1]

परमात्मा की सत्ता का सार है प्रेम। इसीलिए सूफी साधना म प्रेम का बडा महत्व है। भक्ति मे जिस प्रकार देव विषयक रीति का प्रतिपादन हुआ है, उसमे श्रद्धा एव भय की प्रधानता होती है। भारतीय पद्धति मे इन तत्त्वो के होते हुए भी प्रेम का अश विद्यमान था। कृष्ण और गोपिकाओ की अलौकिक प्रेम मे हमें इस प्रेम के पूण दशन होते हैं। भागवत मे भी इसी प्रकार के प्रेम का दशन होता है परन्तु हिन्दी साहित्य मे सवप्रथम साधना के निमित्त प्रेम को आधार बनाते हुए हम सूफी साधका को ही पाते है। प्राप्त सामग्री के आधार पर ज्ञानमार्गी और प्रममार्गी जिन दो प्रकार के साधको का उल्लेख हुआ है उसमे प्रथम वग क लोगा ने भी प्रेम को महत्ता प्रदान की है। सूफी साधको के लिए यह कोई नवीन माग नही था। परम्परया ही उन्हें प्राप्त हुआ

१ हिन्दी साहित्य म विरह प्रसग, पृ० ५। डॉ० हनुमान दास चकोर'।

था। फारस आदि देशा म यह मानव मन मे माधुय भर ही चुका था और यहाँ भी वष्णव सम्प्रदाय की भक्ति परम्परा मे प्रेम का उदभास हो चुका था। परन्तु सूफियो न निराकारोपासना मे प्रेम की आधार शिला पर साधना का एक ऐसा सुदर सदन खडा किया और अय तत्कालीन परम्परा से सामग्री लेकर उसम ऐसा पुट दिया कि देखते ही बनता है।

फारसी मनस्वियो के आधार पर प्रेममार्गी कवियो ने प्रेमाख्यानक काय लिखे पर प्रेम काय कुछ निश्चित दष्टियो पर लिखे गय। नायक किसी रमणी के प्रेम पाश मे आबद्ध हो योगी बनकर निकल पडता है और अनेक कष्टो के उपरात अपनी प्रेयसी को प्राप्त करता है। चार प्रकार के प्रेमो मे से प्राय चतुथ प्रकार से ही प्रेम का आयोजन हम इन कथाओ म पाते हैं। भारतीय सस्कृति म विवाह का अतीव महत्त्व है। इसे एक धार्मिक क्रिया माना गया है। अपरिचितावस्था मे ही वर वधू के पणिग्रहणोपरात उनमे जो प्रेम का उदभास होता है और पुन शन शन मधुरता को प्राप्त होता है वह उनके पवित्र दाम्पत्य के नाम से अभिहित होता है। दूसरे प्रकार का प्रेम वह है जो किसी रम्य स्थान पर परिचय स उत्पन्न होता है। इसम नायिका का सौंदय एव हाव भाव तथा समीपस्थ प्रकृति उद्दीपन का काम करते हैं। उद्वाह इसका परिणाम होता है। विवाह से पूव अधिकतर नायक और नायिका दोना ही विरह मे तडपते रहते हैं। इस बीच दूती प्रयोग एव पत्र प्रेषण भी होता है जो बिरह को और उद्दीप्त कर प्रेम परिपाक का कारण होता है। यदा कदा क्षणिक सयोग भी प्राप्त हो जाता है। ततीय प्रकार का प्रेम प्राय कामुकता पूण ही होता है। बहुपत्नियो मे प्रम का जो स्वरूप हो सकता है, वही इसमे आता है। चतुथ प्रकार का प्रेम प्राय गले ही पडा करता है। यह चित्र या स्वप्न मे दशन, गुण-श्रवण अथवा तत्सम्बधी किसी सुदर के दशन से होता है। पद्मावती म गुण-श्रवण से ही प्रम का उद्भव दिखाया है।

प्रेम चाहे जसे भी उत्पन्न हुआ हो उसम कुछ कष्ट तो होता ही है और जितनी ही आत्मा उसमे रमने का प्रयत्न करती है उतना ही उसमे कष्ट होता है। चूंकि ब्रह्म के प्रति हम शृगारिक भावनाओ का प्रदशन करते हैं, अत इसका मूल कारण ब्रह्म के सन्निकट पहुँचने का प्रयत्न ही कहा जा सकता है। प्रेमाभिलाप की प्ररणा से ही प्रत्यक स्थान पर उसका अनुभव करने का प्रयत्न करता है। चकि वह बाह्य दशन न देने के कारण हृदय को प्रभावित करता है परतु उसकी वह आत्मीयता हृदय म एक विशेष अनुराग और व्यथा उत्पन्न कर देती है।

विद्वानो ने शृगार के दो भेद मान हैं सयोग और वियोग । जब नायक और नायिका परस्पर सयोगावस्था मे होते हैं, वहा पर सयोग शृगार होता है और जहां प्रमी एव प्रेमिका एक दूसरे से दूर रहते हैं और वियोग जन्य अवस्था उत्पन्न हो जाती है वहां वियोग शृगार होता है। वास्तव मे आतरिक यत्रण ही वियोग बनाती है और इसका अनुभव प्रेम वदना पूण हृदय म ही होता है। सूफी कवियो की भावना शृगारी है अत वियोग पक्ष को अधिक महत्त्व दिया गया है क्योकि नायक के विदेश जाने पर नायिका को व्यथित हाना पडता है वहा सच्चे प्रेम की परीक्षा का काल होता है। उस समय अनेकानेक परिस्थितिया आती हैं जो नायक को नायिका के प्रेम के लिए और नायिका को नायक के प्रेम के लिय व्याकुल बना दती हैं और दानों प्रेम के अभाव की महत्ता को स्वीकार करत हैं। इस समय प्रेमी और प्रेमास्पद के हृदय मे सयोग काल की अपेक्षा अधिक स्नेह होता है।' जिस प्रकार दपण मे किसी वस्तु का बिम्ब दूरी बढने पर गहरा होता जाता है, उसी प्रकार प्रिय और प्रेमास्पद की दूरी बढन पर स्नेह की गहराई बढ़ती जाती है। यह विरह वणन अनेक रूपों मे हुआ है। साधारत सूफियो ने दो प्रकार स चित्रण किया है। प्रकृति के आश्रय से और सवथा स्वतन्त्र रूप स। प्रकृति क आश्रय स दो प्रकार से वणन हाता है। उद्दीपन और मानवीकरण के रूप म। पद्मावत मे 'बारहमासा' का चित्रण इस बात का स्पष्ट प्रमाण है। इसम हम नागमती के निरीह, निरावरण गम्भीर एव निमल रूप का अनुभव करते हैं। उसका हृदय अत्यन्त ही उज्ज्वल और पवित्र है। यद्यपि अषाढ मास म दादुर मोर और कोकिला बोलते हैं। उसे अकेले रहन क कारण कष्ट होता है –

जिन घर कता त सुखी हम गारो औ गव।
कत पियारा बाहिरै हम सुख भूला सव ॥ [१]

आचाय शुक्ल न नागमती क विरह वणन को हिन्दी साहित्य का अमूल्य निधि घोषित किया है।[२] उनके अनुसार जायसी के विरह वणन म वेदना का कोमल और निमल स्वरूप, हिन्दू दाम्पत्य जीवन के ममस्पर्शी माधुयपूण चित्र चतुर्दिक व्याप्त प्रकृति और व्यापारो क साथ हृदय की साहचय भावना आदि का प्रसगानुकूल स्वच्छन्द प्रवाहपूण ढग से अतीव सुन्दर अकन किया गया है। उसम प्राकृतिक वस्तुओ क श्लिष्ट विनद चित्रण के साथ-साथ सादृश्य और

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १५३।
२ वही (भूमिका भाग) पृ० ४०।

वयम्य के चित्रो द्वारा प्रस्तुत और अप्रस्तुत का सु दर सामजस्य भाव सौदय की एक निराली छटा उत्पन कर देता है इसका एक उदाहरण दष्टव्य है –

'बरम मघा झकोरि झकोरी । मोर दुइ नन चुब जस ओरी ॥
पुरवा लागि भूमि जल पूरी । आक जवास भई तस झूरी ॥
धान सूख भरे भरवो माहा । अवहुँ न आएहि सीचेहि लाहा
थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक ।
धनि जोवन अवगाह महँ दे बूढ़त पिउ ! टेक ॥"[1]

यहाँ कवि सादृश्य के आधार पर नागमती के विरह का मार्मिक वणन कर रहा है। विरह व्यजना के लिये प्रकृति का माध्यम ग्रहण करन से जायसी के विरह वणन म हृदय के वेग की व्यजना बडे स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटित हुई है और उसकी इस स्वाभाविकता न भावा को चरम उत्कष तक पहुचा दिया है। जायसी मानव वत्तियो और भावो को किस प्रकार चरमोत्कष प्रदान कर देते हैं इसका एक उदाहरण प्रस्तुत है। वह अभिलाषा का वणन करते हैं–

'राति दिवस बस यह जिउ मोरे । लागौ निहोर कन्त अब मोरे ॥
यह तन जारौं छार क कहौं कि पवन उडाव ।
मकु तेहि मारग उडि परै, कन्त धरै जहँ पाव ॥ [2]

विरहिणी प्रिया की अभिलाषा का ऐसा हृदयग्राही वणन या तो जायसी के 'पद्मावत' मे ही मिलता है या मझन के मधुमालती' में। उपयुक्त पक्तियो मे नागमती के हृदय की सम्पूण कातरता दीनता पति के प्रति निष्ठा और सच्चे प्रेम म आत्म बलिदान की उत्कट हृदयस्प र्शि अभिलाषा यक्त हो रही है। ऐसी ही पक्तियो ने नागमती के विरह को महत्त्वशील बना दिया है। जिससे नागमती का रत्नसेन के प्रति अगाध स्नेह का परिचय मिलता है। 'पद्मावत' म नागमती का विरह ही सवश्रेष्ठ है इसीलिए हम सवप्रथम नागमती के विरह की वस्तविकता का ही परीक्षण करेंगे।

रत्नसन पद्मावती को प्राप्त करने सिंहल चला गया है। उसे वहाँ प्रेसित करने मे हीरामन शक एकमात्र कारण रहा है। नागमती पति विरह मे यद्यपि चित्तौर आने वाले माग पर टकटकी लगाये बठी पति की प्रतीक्षा करती रहती है और उस कालस्वरूप तोते को कोसती रहती है जिससे नागमती का रत्नसेन के प्रति अन य प्रेम प्रकट होता है। इस स्थिति का वणन करते हुये जायसी कहत है –

१ जायसी ग्र थावली (भूमिका भाग) पृ० १५३।

२ वही पृ० १५५।

'नागमती चितउर पथ हेरा । पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा ॥
नागर काहु नारि बस परा । तेइ मोर पिउ मोसों हरा ॥
सुआ काल होइ लइगा पीऊ । पिउ नहिं जात, जात वर जीऊ ॥ '[1]

सारस की जोडी बिछुड गयी । नागमती पति विरह म सूख-सूख कर पिंजर बन गयी है । प्रिय के अभाव मे सारा ससार उसे भयानक लगता है । प्रकृति, अपने विभिन्न मादक सु दर रूपा द्वारा उसकी विरहाग्नि को और अधिक प्रदीप्त करती रहती है । नागमती को जीवन भार लगने लगता है । वह व्यथा से पागल हुई जा रही है –

'पिउ वियोग अस बाउर जीऊ । पपिहा नित बोल पिउ पिऊ ॥
अधिक काम दाधे सो रामा । हरि लेइ सुआ गयउ पिउ नामा ॥
विरह बान तस लाग न डोली । रक्त पसीजि भीजि गई चोली ॥
सूखा हिया हार भा भारी । हरे हरे प्रान तर्नाह सब नारी ॥'[2]

उसे विश्वास सा हो जाता है कि अब उसके प्राण नही बचेंगे । उसका रमक ता उससे दूर है । वह मरते समय उसकी बोली तक नही सुन सकेगी–

प्रान पयान होत जो राखा । को सुनाव प्रीतम क भाखा ॥'[3]

एक-एक कर महीने बीतते चले जाते हैं पर तु उसका प्रियतम लौटकर नही आता । विरह निरन्तर व्यथित करता रहता है । वह न जीती है न मरती है । उसकी दशा अत्यन्त विषम हो उठी है । जो प्राकृतिक उपादान सयोग के समय उसे मदा मत्त बना अधिक आनन्द प्रदान करते थे व अब भी उसके हृदय मे प्रिय मिलन की उत्कठा तो उत्पन्न करते हैं पर तु पति के समीप न रहने क कारण उसे निरन्तर दु ख ही पहुँचाते रहते हैं । इस प्रकार यहाँ जायसी प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप का वर्णन कर नागमती की विरह व्यथा को चरमोत्कर्ष प्रदान कर देते हैं ।

पति परित्यक्ता, पति विरह विदग्धा नागमती अपना सारा अहकार और रूप गर्व भूल एक सामान्य नारी बन जाती है । वह यह भूल जाती है कि वह एक रानी है । उसे लगता है जसे सारी प्रकृति ने उसके विरुद्ध एक भयानक षडयन्त्र रच रखा है और उसे सताने तथा उसकी प्रेम परीक्षा मे लग गयी है । प्रकृति के उपादान विरह को उत्पन्न करते हैं जिसमे काम की भावना उद्दीप्त हो जाती है और प्रिय की स्मृति सताने लगती है । उसी समय प्रेम की सच्ची

१ जायसी ग्रन्थावली, प० १५१ ।
२ वही प० १५१ ।
३ वही पृ० १५१ ।

परीक्षा होती है। प्रकृति के चतुर्मुखी आक्रमण से त्रस्त हो नागमती अत्यन्त करुण स्वर में प्रियतम को पुकारने लगती है। अषाढ़ का मास आ गया है। आकाश में उमड़ते काले मेघों को देख उसे ऐसा लगता है मानों विरह ने सेना सजाकर उसपर आक्रमण कर दिया है–

चढ़ा अषाढ़ गगन घन गाजा। साजा विरह दुन्द दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा, बग पाँति देखाए॥
खड्ग बीजु चमक चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा॥[1]

इस परिस्थिति से सन्त्रस्त होकर नागमती आर्त्त स्वर में पति को रक्षार्थ पुकारती है–

"औनई घटा आइ चहुँ फेरी। कन्त! उबारु मदन हौं घेरी॥"[2]

परन्तु उसका प्रियतम उसकी रक्षा करने लौट नहीं आता। वह प्रतीक्षा करते करते थक जाती है। उसके और प्रियतम के बीच में अथाह समुद्र लहरा रहा है। उसकी जीवन नैया का खिवैया सात समुद्र पार दूर बैठा है। नागमती की समझ में नहीं आता कि उस तक कैसे पहुँचे। वह बेचारी पूरी तरह से विवश और निरुपाय हो कहती है–

परवत समुद्र अगम बिच बीहड़ घन बन ढाँख।
किमि कै भेंटौ कन्त तुम्ह ना मोहि पाँव न पाँख॥[3]

इसी प्रकार एक एक कर नये महीने आते जाते हैं और उसे निरन्तर विरह ज्वाला में अधिकाधिक दग्ध करते बीत जाते हैं। वह सूख सूख कर कंकाल बनती जाती है परन्तु प्रियतम फिर भी लौट कर नहीं आता। वह विदेश में जाकर उसे भुला बैठा है–

'कन्त न फिरे विदेसहि भूले।'

अब वह क्या करे! कैसे पति के पास पहुँचे अथवा कैसे उसे अपने पास बुलाये। अन्त में वह भौरे और काग से प्रार्थना करती है कि वे प्रियतम के पास उसका सन्देश लेकर जाने की कृपा करें–

'पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा हे भौंरा! हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई तेहिक धुआँ हम्ह लाग॥'[4]

---

१ जायसी–ग्रन्थावली पृ० १५२।
२ वही पृ० १५२।
३ वही पृ० १५३।
४ वही पृ० १५३।
५ वही, पृ० १५४।

परन्तु कोई भी उसका सन्देश लेकर प्रियतम के पास नहीं जाता । वह विरह की भयानक ज्वाला से व्याकुल हो बार बार प्रियतम को पुकारती है–

जरत बजागिनि करु, पिउ ! छाहाँ । आइ बुझाउ, अंगारन्ह माहाँ ॥[1]

कवि कहता है कि यह विरहाग्नि इतनी भयानक होती है कि सती के अतिरिक्त इसकी ज्वाला को ससार में दूसरा कोई नहीं झेल सकता–

'गिरि, समुन्द ससि मघ, रवि सहि न सकहिं वह आगि ।
मुहम्मद सती सराहिए, जरै जो अस पिउ लागि ॥'[2]

वर्ष के बारह महीने एक एक कर बीत जाते हैं और फिर वर्षा ऋतु आ जाती है परन्तु फिर भी नागमती का प्रियतम लौटकर नहीं आता ।

'बारहमासा' के रूप में किए गये नागमती के इस विरह वर्णन में हम नागमती को सर्वत्र एक पति विरह व्यथिता नारी के रूप में ही पाते हैं । उसका यह रूप प्रस्तुत कर जायसी ने विरह रस की अनुभूति का साधारणीकरण कर दिया है । इस 'बारहमासा' में नागमती के विरह का ही नहीं अपितु विरह मात्र का सर्वाधिक मार्मिक और सात्विक रूप चित्रित हुआ है ।

वर्ष के बारह महीने तो नागमती प्रासाद के भीतर ही काट लेती है, परन्तु फिर भी जब उसका प्रियतम लौट कर नहीं आता तो वह विरहाग्नि की अतितीव्रता से उन्मत्त-सी होकर वन वन विलाप करती फिरती है । उसकी यह विरहाग्नि इतनी भयानक है कि वह जिस पक्षी या वृक्ष के पास जा उसे अपनी विरह कथा सुनाती है वही जलकर भस्म हो जाता है–

जहि पखी के नियर होई, कहै विरह कै बात ।
सोइ पखी जाइ जरि तरिवर होइ निपात ॥[3]

वेदना की अतिशयता के कारण उसकी आँखों से निरन्तर खून के आँसुओं से घुघुचियों का सा ढेर लग जाता है–

'जहँ–जहँ ठाढ़ि होइ बनवासी । तहँ तहँ होइ घुघुचि कै रासी ॥'[4]

नागमती उपवनों के वृक्षों के नीचे रात रात भर रुदन करती फिरती है । इस दशा में पशु पक्षी पल्लव जो कुछ भी सामने आता है उसे वह अपना दुःख सुनाती है । इस पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है । 'वह पुण्य

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० १५६ ।
२ वही, पृ० १५६ ।
३ वही, पृ० १५८ ।
४ वही, पृ० १५८ ।

दशा घर है जिसमे ये सब अपने सगे लगते हैं और यह जान पडने लगता है कि इन्हें दुःख सुनाने से भी जी हलका होगा। सब जीवो का शिरोमणि मनुष्य और मनुष्यों का अधीश्वर राजा ! उसकी पटरानी जो कभी बडे बडे राजाओ और सरदारो की बातो की ओर भी ध्यान न देती थी वह पक्षियो से अपने हृदय की वेदना कह रही है उनके सामने अपना हृदय खोल रही है। हृदय की इस औदार्य पूर्ण और व्यापक दशा का कवियो ने प्रेम दशा के भीतर ही वर्णन किया है। वाल्मीकि कालिदास आदि से लेकर जायसी, सूर, तुलसी आदि कवियो ने इस दशा का वर्णन किया है। वाल्मीकि के राम सीता हरण होने पर वन वन पूछते फिरते है-- हे कदम्ब ! तुम्हारे पुष्पो से अत्यधिक प्रीति रखने वाली मेरी प्रिया को यदि जानते हो तो बताओ। हे बिल्व वृक्ष ! यदि तुमने उस पीत पट धारिणी को देखा हो तो बताओ। हे मृग उस मृग नयनी को तुम जानते हो ? [2] इसी प्रकार तुलसी के राम भी वन के पशु पक्षियो से पूछते है--

'हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ? [3]

कालिदास का यक्ष भी इसी चेतनाचेतन भेद इसी प्रेम दशा के भीतर भूला है। इस प्रकार की स्थिति का चित्रण उन्माद की व्यंजना के लिए किया जाता है। नागमती उपवनो म रोती फिरती है। उसके विलाप से नीडो म स्थित पक्षियो की निद्रा हराम हो जाती है--

फिरि फिरि राव कोइ नहिं बोला। आधी रात विहंगम बोला ॥
तू फिरि फिरि दाहै सब पाखी। केहि दुख रैनि न लावसि आखी ॥ [4]

राजा पुरुरवा कोकिल हस इत्यादि को पुकारता ही फिरता है पर कोई सहानुभूति प्रकट करता नही दिखायी देता। [5] पर नागमती की दशा पर

१ जायसी ग्रंथावली भूमिका भाग पृ० ४०।

२ अपि कच्चित्त्वया दृष्टा सा कदम्ब प्रिया प्रिया।
कदम्ब यदि जानीषे शस सीता शुभाननाम ॥
स्निग्धपल्लवसकाशा पीत कौशेयवासिनी।
शसस्व यदि वा दृष्टा बिल्व बिल्वोपमस्तनी ॥
--श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणम् अरण्यकाण्ड सर्ग ६० श्लो० स० १२-१३
पंडित पुस्तकालय काशी प्रथमावृत्ति सन १९५१।

३ रामचरित मानस अरण्यकाण्ड दोहा ३०/९, गीताप्रेस, गोरखपुर।

४ जायसी ग्रंथावली, पृ० १५९।

५. विक्रमोर्वशीयम्, अंक ४।

एक पक्षी को दया आती है। वह उसके दुःख का कारण पूछता है। नागमती उस पक्षी से कहती है—

'चरिउ चक्र उजार भए कोई न सदेसा टेक ।
कहौं विरह दुख आपन, बठि सुनहु दड एक ॥'[1]

पुन वह आगे कहती है हे वीरन! मैं अपना दुःख किसस कहूँ। अपना दुःख तो उसस ही कहना चाहिए जो पराई पीड़ा का अनुभव कर सके। जो प्रियतम की कथा को आकर मुझे सुनायेगा, मैं आज म उसकी दासी बनी रहूंगी—

कथा जो कहै आइ आहि केरी। पावरि होउ, जनम भरि चेरा ॥'[2]

वह तो अपने प्रियतम क नाम की माला जपत जपत स्वय माला के सदृश क्षीण हो गयी है। वह अपनी व्यथा उसस कस कहे क्योंकि—

'हाड भए सब किंगरी, नस भई सब तांति ।
रोव रोव त धुनि उठ, कहौं विथा केहि भाँति ॥'[3]

विरहिणी की एसी करुण विवश दीन और कातर दशा का ऐसा हृदय ग्राही चित्रण हिंदी साहित्य म दुलभ ही माना जायगा। यहाँ मानो जायसी न अपने हृदय की सारी विरह व्यथा को सजीव और साकार बना दिया हो।

इसके उपरात नागमती उस पक्षी द्वारा पद्मावती के लिए जो सदेश भिजवाती है उसम उसके जीवन की सारी मार्मिक व्यथा घुल निसर कर पावन हो उठी है। यह सदेश ही वस्तुत इस सारी विरह व्यथा का मानो प्राण बिंदु बन गया है। वह सदेश इस प्रकार है—

'पदमावति सौं कहेउ विहगम। कत लोभाई रही करि सगम ॥
+ + +
मोहि भोग सो काज न बारी। सौंह दीठि क चाहन हारी ॥'[4]

इसके साथ ही नागमती रत्नसेन के लिए जो सदेश भिजवाती है उसम अपने दुख की एक भी बात न कह केवल रत्नसेन की माता की पुत्र वियोग म हो रही दारुण दशा का ही वणन करती है। वह स्वाभिमानिनी पत्नी पति को अपनी विरह व्यथा सुना उसे दुःख नही पहुँचाना चाहती। उसका यह

१ जायसी ग्रन्थावली, पृ० १५९।
२ वही।
३ वही, पृ० १५९।
४ वही।

विरह उस प्रणय का विरह है जो स्वय जलना जानता है, परन्तु दूसरे तक उसकी ज्वाला नही पहुँचने देना चाहता।

पदमावती के हृदय मे विरह का आरम्भ काम के प्रभाव से उत्पन्न होता है। जब राजा रत्नसेन सिंहल दीप पहुँच कर उसे प्राप्त करने के लिए योग साधना करन लगा तो उसके योग का प्रभाव पदमावती के हृदय में विरह को दग्ध कर देने वाली अग्नि उत्पन्न कर उसे जलाने लगता है। परन्तु विरह की यह भावना किसी व्यक्ति विशेष के लिए न होकर काम की तीव्रता के ही कारण उत्पन्न होती है। पदमावती उस विरह के कारण व्याकुल हो उठती है। कवि उसके विरह को रत्नसेन की योग साधना का प्रभाव बताता हुआ कहता है—

पदमावती तेहि जोग सजोगा। परी प्रम बस गह वियोगा॥
नीद न परै रनि जो आवा। सेज केंवछि जानु कोइ लावा॥[1]

इसमे रत्नसेन का कहीं स्पष्ट उल्लेख न होने स पदमावती की इस विरह व्याकुलता को काम जनित ही माना जायेगा। वह परम्परायुक्त रूढ विरह वणन है। हम पदमावती के विरह का एकाएक उत्पन्न हो भयकर रूप धारण करते नही पाते। उसकी विरह भावना मे क्रमिक विकास होता चलता है। शिवमडप म रत्नसेन से साक्षात्कार हो जाने के उपरात उसका विरह काम जनित न रहकर सच्चे विरह का रूप धारण कर लेता है। इसके बाद हम उसके विरह का उत्तरोत्तर प्रगाढ रूप धारण करते देखत हैं। वह रत्नसेन से प्रेम करने लगी है और जब उसका पिता ग धव सेन रत्नसेन को बदी बना उसे शूली पर चढा देने की आज्ञा देता है तो उस समाचार को सुन पदमावती का रोम राम अपने प्रियतम क प्रति व्याकुल हो उठता है और वह असह्य वेदना को न सह पाकर मूच्छित हो जाती है। कवि कहता है।

'चित्त जो चिता कीन्ह धनि रोव रोव समेत।
सहस साल सहि आह भरि मुरुछि परीगा चेत॥'[2]

उसकी दशा अतीव विषम हो उठती है। उसके प्रियतम के प्राण सकट म पड़े हुए हैं यह जान वह स्वय मरणासन्न हो जाती है। उसकी सखियाँ उसकी सासो को गिनने लगती हैं—

---

१ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ६३।

२ वही, पृ १०६।

'जो वहिं सास खिनहि खिन सखी । कब जिउ फिर पौन-पर पखी ।।'[1]

पदमावती की यह विरह यथा सारे विश्व मे व्याप्त हो जाती है। सारा विश्व उसके विरह मे दग्ध हो जाता है—

'कसेहु विरह न छाड़, भा ससि गहन गरास ।।
नखत चहूँ दिसि रोवहिं, अधर धरनि अकास ।।'[2]

उसकी यह विरहाग्नि ऐसी प्रबल और भयानक है कि कोई भी उपाय उसे शान्त करने म असमथ है—

जहँ लगि चदन मलयगिरि, औ सायर सब नीर ।।
सब मिलि आइ बुझावहिं, बुझ न आगि सरीर ।।'[3]

उसने तो अब स्वय को अपने प्रियतम की शाश्वत जीवन सगिनी मान लिया है। जीवित रहन से दानो साथ रहेग और यदि मत्यु का आलिगन करना पडेगा तो दोनो साथ ही करेंगे। साथ ही पदमावती अपने प्रियतम की सारी आपदाओ को अपने ऊपर ल लना चाहती है जिसम उसके प्रियतम का बाल भी बाका न हो सके—

'जो रे जियहिं मिलि गर रहहिं मरहिं तौ एक दोउ ।
तुम जिउ कहँ जिनि होइ किछु मोहि जिउ होइ सो होउ ।'[4]

इसके आग भी पदमावती रत्नसेन भेंट खड मे रत्नसेन से मिलने पर पद्मावती अपने विरह का वणन करती हुई रत्नसेन से कहती है वह उसके विरह मे तडपती रहती थी। परन्तु पदमावती का यह सारा विरह सयोग से पूव का और परम्परा मुक्त विरह रहा है। इसलिए इसम विरह की वह मार्मिक अनुभूति नही मिलती जो सयाग के उपरा त प्रम प्रेमिका के बिछुड जाने पर हृदय म उत्पन्न होती है। विरह की इसी अनुभूति का वास्तविक और मार्मिक माना जाता है। पद्मावती के जीवन मे विरह की यह स्थिति उस समय आती है, जब सिहल से चित्तौर लौटते समय माग म समुद्र मे जलपोत टूट जाता है और रत्नसेन और पदमावती समुद्र मे बहते हुए भिन्न भिन्न तटो पर जा लगाते हैं। समुद्र की तनुजा लक्ष्मी तट पर मूर्छित पडी पदमावती को होश म लाती है और पदमावती चेतनावस्था म आते ही, स्वय को एकाकी पा पति वियुक्ता

१ जायसी ग्रथावली पृ० १०६
२ वही पृ० १०७
३ वही, पृ० १०८
४ वही पृ० ११०

क्रौंची की भाँति आत क्रन्दन करने लगती है। यहाँ पदमावती का विरह विलाप मे आध्यात्मिक अनुभूति का सा रग आ जाता है। पति चक्षुओ के पास और मानस मे ही स्थित है परन्तु उस तक पहुँचना सम्भव नही है। इसलिए पदमावती कहती है—

पिउ हिरदय मह भेंट न होई। को रे मिलाव कहौं कोहि रोई।[1]

पद्मावती के विरह का मार्मिक अनुभूतिमय रूप इसी स्थल पर निरखता है। उसकी यह विरह वदना नागमती की विरह वदना के ही समान अत्यन्त गहन, प्राणान्तक और हृदय द्रावक है। यही विरह प्रेम की कसौटी है।

इसके उपरान्त पद्मावती के विरह का दूसरा मार्मिक रूप उस समय देखने को मिलता है जब अलाउद्दीन रत्नसेन को बन्दी बना दिल्ली से ले जाता है। पद्मावती को इस समय दुहरा दुख सहना पडता है। एक तो उसका पति उससे बिछुड कर शत्रु के बदी गह मे भयकर यातना भोग रहा है दूसरे पद्मावती के कारण ही उसके पति को बदी बनाया गया है। यही सोच सोच कर वह करुणविलाप करने लगती है।[2] वह स्वय को बन्दी बनवा पति की मुक्ति करवाना चाहती है।[3]

पद्मावती के विरह का जो अन्तिम रूप सामने आता है उसमे विरह व्यथा की आकुलता और छटपटाहट न होकर एक प्रशान्त गाभीर्य मिलता है। वह षोडश शृगार कर पति के साथ सती होने जाने के लिए प्रस्तुत हो जाती है और शान्त स्वर मे कहती है—

'यही दिवस हौं चाहत नाहा। चलौं साथ पिउ ! देइ गलबाहा ॥
सारस पखि न जिय निनारे। हौ तुम्ह बिनु का जिऔं पियारे ॥
नेवछावरि कै तन छहरावौ। छार होउँ सग बहुरि न आवौ ॥
दीपक प्रीति पतग जेउ जनम निबाह करेउ ॥
नेवछावरि चहु पास होइ कठ लागि जिउ देउ ॥

यह पद्मावती के विरह की चरमावस्था है। हम पूर्वांकित पक्तियो मे देख

---

१ जायसी ग्रन्थावली प० १७७

२ 'नीर गभीर कहाँ हो पिया। तुम बिन फाटै सरवर हिया
—जायसी ग्रन्थावली प० २६४

३ पिय जेहि बदि जोगिनि होइ धावौ। हौं बदि लेउ, पियहि मुकरावौं ॥
—वही प० २८०

४ वही, पृ० २९९

आये हैं कि पद्मावती का विरह विभिन्न परिस्थितियों में विकास पाता हुआ उत्तरोत्तर अधिक प्रगाढ़, गहन और गम्भीर बनता जाता है। इसी कारण उसके विरह में एक अद्भुत स्वाभाविकता और मार्मिकता उत्पन्न हो गयी है। इसके विरह का यह अंतिम रूप पूर्ण प्रशान्त और गम्भीर रूप धारण कर लेता है, जिसमें करुण क्रन्दन या विरह वेदना के स्थान पर पति से शाश्वत मिलन की आनन्दमयी किरणें विकीर्ण हो रही हैं। डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने पद्मावती के उपयुक्त चित्र से अभिभूत हो लिखा है। 'पद्मावती के ये शब्द कितने मार्मिक हैं। व्यथा अपनी सारी मधुरता, विरह अपनी सारी मिठास, प्रणय अपने सारे स्थायित्व और नारी अपनी चरम भावुकता के साथ इन शब्दों में साकार होकर बोल रही है।"[1]

पदमावत में विरहानुभूति का सर्वप्रथम दर्शन रत्नसेन के विरह के रूप में होता है। पद्मावती के विरह के समान ही रत्नसेन का विरह भी विभिन्न स्थितियों में पल्लवित और विकसित होता चलता है। इसके विरह को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है--(१) पूर्वराग का विरह, (२) विवाह के बाद का विरह।

प्रथम विरह का आरम्भ हीरामन शुक द्वारा पद्मावती के रूप सौंदर्य का वर्णन सुनने के पश्चात होता है। यह 'प्रेम खण्ड से प्रारम्भ होकर पद्मावती सुआ भेंट खंड' तक चलता है। इस भाग में रत्नसेन पद्मावती के लिए विरह व्याकुल तो रहता है परन्तु उसे इस बात का निश्चय नहीं रहता कि पद्मावती उसके प्रणय को स्वीकार कर लेगी। इसके आगे पदमावती रत्नसेन भेंट खण्ड में जब दोनों का प्रथम मिलन होता है तो रत्नसेन का यह विश्वास हो जाता है कि पद्मावती उसे स्वीकार कर लेगी। उसके विरह का दूसरा अंग समुद्र में दोनों के बिछुड़ जाने पर सामने आता है। यहाँ पर भी दोनों के सच्चे प्रेम की परख होती है।

रत्नसेन की विरह भावना केवल पद्मावती के लिए ही रही है। नागमती के प्रति उसके हृदय में विरह की ईष मात्रा भी नहीं है। केवल एक ही स्थान पर इसकी हल्की सी झलक मिल जाती है जब रत्नसेन चित्तौर लौटकर नागमती को उलाहना देने पर उससे कहता है--

'नागमती तू पहिलि बियाही। कठिन बिछोह दहै जस याही।'[2]

---

१ हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य डा० कमल कुलश्रेष्ठ पृ० ३१७।
२ जायसी ग्रंथावली पृ० १८९।

परन्तु हम रत्नसेन के कथन पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि सिंहलद्वीप में रत्नसेन को हम एकबार भी नागमती की याद करते हुए नहीं देखते। वह पहले पद्मावती के विरह में डूबा रहता है और फिर उसके साथ केलि क्रीड़ा करने में। रत्नसेन के वियोग की तीव्रता पद्मावती के प्रति ही दिखाई गई है।

रत्नसेन के हृदय में हीरामन द्वारा पद्मावती के सौंदर्य का वर्णन सुन विरह भावना का उदय होता है जिसे आचार्य शुक्ल अस्वाभाविक मानते हैं। रत्नसेन उस वर्णन को सुनते ही तुरन्त विरह वेदना में व्याकुल हो मूर्छित हो जाता है। होश में आने पर त्राहि त्राहि करने लगता है और पुनः पद्मावती को प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर राजपाट त्याग योगी बन सिंहल द्वीप की यात्रा पर निकल पड़ता है। वह यह दृढ़ निश्चय कर लेता है कि लौटूंगा तो पद्मावती को लेकर ही अन्यथा उसी के दरवाजे पर प्राण दे दूँगा—

जो रे जिऔं तो बहुरौ मरौं तो आहि के बार ॥ [1]

मार्ग की बाधाएं उसे रंच मात्र भी विचलित नहीं कर सकतीं।[2] उसके मन में अन्य कोई भी अभिलाषा न होकर केवल पद्मावती के दर्शन की ही अभिलाषा है क्योंकि उसी ने उसे प्रेममार्ग का पथिक बना दिया है।[3] कुछ आलोचकों ने रत्नसेन के इस प्रेम और विरह को अस्वाभाविक माना है और यह निर्णय दिया है कि उसके इस विरह में मानवीय संवेदना युक्त गहन अनुभूति के दर्शन नहीं होते। यह अलौकिक अधिक प्रतीत होता है।

उसकी विरहानुभूति में मार्मिकता का समावेश उस स्थल से होता है जहाँ वह शिवमंडप में पद्मावती के दर्शन कर उसके लिए अपने प्राणों की बाजी लगा देता है और समाधि लगा पद्मावती के नाम का जप करने लगता है। अन्ततोगत्वा उसे पद्मावती मिल जाती है। दोनों का उद्वाह हो जाता है परन्तु इसके बाद भी उसके विरह के एक नये रूप के दर्शन होते हैं। सुहागरात

---

१ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५९।

२ हौं पद्मावती कर भिखमंगा। दीठि न आव समुद औ गंगा

—वही पृ० ६०।

३ न हौं चहौं सरग कै राजू। ना मोहिं नरक सेंति किछु काजू।
चाहौं आहि कर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि प्रेम पथ लावा ॥

—जा० ग्र० पृ० ६६।

को पद्मावती उसे तग करने के लिए ईषत्काल के लिए छिप जाती है तो वह विक्षिप्त के समान प्रलाप करने लगता है। यहाँ पर पलकान्तर वियोग है जिससे प्रेम की अनन्यता द्योतित होती है। यद्यपि यह विरह अस्वाभाविक और बमौके का कहा जा सकता है। उसके विरह का मार्मिक रूप केवल उस समय पूर्णरूपेण उभरता है जब समुद्र में उन दोनों का विछोह हो जाता है। वह अतीव आर्त्त स्वर में विलाप करता है।[1] वह सारे सुरों को पुकारता है कि वह उसकी सहायता करें, जिससे समुद्र उसकी प्रिया को परावर्तित कर दे। वह ईश्वर से प्रार्थना करता है कि—

'जानसि सब अवस्था मोरी। जस बिछुरी सारस क जोरी॥
एक मुए ररि मुव जो दूजी। रहा न जाइ आउ अब पूजी॥
झूरत तपत बहुत दुख भरऊ। कल्पौ माथ वेगि निस्तरऊ॥
मरौं सो लइ पद्मावति नाऊ। तुइ करतार करसि एक ठाऊ॥
दुख सो प्रीतम भेटि क सुख सो खाव न काइ।
एहि ठाव मन उरप, मिली न बिछोहा होइ॥'

रत्नसेन की यह विरहानुभूति यथार्थ गहन और प्राञ्जल है। जिसमें प्रेम की उदात्तता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरह की व्यापकता का जैसा वर्णन जायसी ने किया है वैसा अन्य किसी ने नहीं। प्रेमी के साथ प्रियतम भी विकल रहता है वह भी तड़पता है यह पहले कहा जा चुका है। सूफी सिद्धान्तानुसार जिस प्रकार जीवात्मा परमात्मा से मिलने के लिए विकल है, उसी प्रकार परमात्मा भी जीव से मिलने के लिए उत्सुक है। भारतीय परम्परा के अनुसार भी यदि गोपिकाएँ कृष्ण से मिलने के लिए उत्सुक हैं तो कृष्ण भी गोपिकाओं से मिलने के लिए उत्कंठित हैं। प्रेमाख्यानक काव्यों में सभी नायक नायिकाएँ विरह से व्याकुल हैं तथा उन्हें संयोग होने पर ही सुख मिला है। नागमती, पद्मावती और रत्नसेन आदि के विरह वर्णन से यही ज्ञात होता है कि सारा संसार ही प्रपंच समेत विरह से व्याकुल हो रहा है। नायक, नायिका, एवं उपनायिकाओं का विरह एकत्व की ही सूचना देता है। एक प्रेम ही समस्त संसार विरही हुआ दुःखी हो रहा है। जायसी का कहना है कि विरहाग्नि से

---

१ 'काहि पुकारौं, का पँह जाऊ। गाढ़े मीत होइ ररहि ठाऊ''
—वही, पृ० १८०।

सूर्य अहर्निशि तपता है तथा कंपित-सा दिखायी देता है। क्षण में स्वर्ग और क्षण में पाताल हो जाता है परन्तु तनिक भी चैन नहीं पाता—

'विरह के आगि सूर जरि कापा। रातिहि दिवस जरै ओहि तापा॥
खिनहि सरग खिन जाइ पतारा। थिर न रहै एहि आगि अपारा॥'[1]

जीवात्मा ईश्वर का ही अंश है, इसलिए वह सदैव अपने मूल से मिलने के लिए तड़पता रहता है। यह विरह उसकी साधना में बड़ा सहायक होता है। यह प्रेम की पीर को जगा देता है और पीर आत्म चेतना को जगाती है। जीव के सजग हो जाने पर सुरति जग जाती है जिससे पिउ पिउ के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता—

विरह जगावै दरद कौं, दरद जगावै जीव।
जीव जगावै सुरति कौं पंच पुकारे पीव॥[2]

विरह के पश्चात मिलन का जो परम सुख होता है इसको प्रेमी ही जानता है। दुख के काले बादल हट जाते हैं और सुख का तारा उदित हो जाता है—

बिछुरंता जब भेंटे, सो जानै जेहि नेह।
सुक्ख सुहेला उग्गवै दुख झरै जिमि मेह॥[3]

निष्कर्ष यह है कि सांसारिक दुखों को मिटाने का एकमात्र उपाय सूफी मत के अनुसार ईश्वरीय प्रेम की भावना है। ईश्वरीय प्रेम के माधुर्य में ही जीवन की कटुता विलीन हो सकती है यह सूफी सिद्धांत की लौकिक उपादेयता है। इस प्रकार लोक तथा अध्यात्म दोनों का समन्वय इस मत में प्राप्त होता है।

जायसी सूफी कवि हैं। वे प्रेम के महत्त्व को जानते हैं। प्रेम की सार्थकता प्रिय के प्रति सभी भावनाओं के एकनिष्ठ हो जाने में है। मन की सारी वृत्तियां सिमट कर जब प्रियमयी हो जाती हैं तो प्रेम सार्थकता प्राप्त कर लेता है। मन की वृत्तियों की यह एकनिष्ठता विरह की स्थिति में ही संभव है। विरह के क्षणों में प्रिय की स्मृति अधिक तीव्र हो जाती है। यह तीव्रता चित्त को एकाग्र करती है। संसार के सारे आकर्षणों से हटकर मन प्रिय के

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ७८
२ संत बानी संग्रह (दादू) भाग पहला, पृ० ८२
३ जायसी ग्रन्थावली पृ० ७६

५ | प्रेम का प्रभाव और महत्व

प्रेम ही ईश्वर है

जायसी ही नही अनेक मर्मी कवियो ने प्रेम को मानव जीवन की सर्वाधिक प्रभावशाली, व्यापक एव दिव्य शक्ति के रूप म महत्व दिया है। प्रेम ही मनुष्य को देवत्व प्रदान करता है। प्रेम ही ईश्वर है।

कवि गणपति ने ग्रन्थारम्भ में सवप्रथम रतिरमण की स्तुति करते हुए लिखा है कि ब्रह्मा, हरिहर सभी को कुसुमशर ने विजित कर लिया है। यह सष्टि विस्तार को सभाले हुए हैं विश्व की अभिव्यक्ति का कारण देव प्रथम वदनीय हैं।[1] लगभग इसी प्रकार के भाव रस रतन कवि 'पुहकर ने भी प्रकट किये हैं। उनका कथन है कि जिस तन मे प्रेम' प्रकट हो जाता है, वह अजर अमर हो जाता है। इस माग का अन्त पाना कठिन है। अनेक लोगो ने अनेक प्रकार से इसका गुणगान किया है।[2] यह सष्टि प्रेम का ही प्रकट रूप है। यह बतलाते हुए कवि मझन ने कहा है कि प्रेम सष्टि का अमूल्य रत्न

---

१ 'सुर नर पन्नग मणि वली, लक्ष चउरासी लोप।
ब्रह्मा हरिहर कुसुमशर जिणि जिरया सवि कोय॥
समल ज्यो मवि सष्टिनु ए विण आवइ छेह।
कारण विश्व वधारवा आदि उपायु एह॥'
सम्पादक—एम० आर० मजमूदार, माधवानल कामकदला प्रबन्ध, पृ० १ (१९४२)

२ जिहितन प्रम प्रगट तन कीनौ। सो तनु अजर अमर कर दीनौ।
कठिन पथ जिहि अन्त न पायौ। बहुविधि विविधि बहुत विधि पायौ।"
—'रस रतन' स० डा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, काशी, पृ० ३९ (२०२० वि०)

है। उसी का जीवन धन्य है जिसके मन मे प्रेम निवास करता है।[1] प्रेम की ज्योति से ही ससार मे प्रकाश होता है प्रेम के समान सुन्दर वस्तु ससार म कोई नहीं है।[2] जिसके हृदय मे प्रेम का दीप जलता है उसका सम्पूण जीवन उज्ज्वल हो जाता है।[3] रसमजरी के आरम्भ म भक्त शिरोमणि नन्ददास ने भी परम ज्योति ईश्वर को प्रेममय कहकर नमस्कार किया है।[4] और अततोगत्वा अगम अगोचर प्रभु को अतिनिकट लाने का मूल मन्त्र भी इसी 'प्रेम' को बताया है--

"जदपि अगमते अगम अति निगम कहत है जाहि।
तदपि रगीले प्रेम ते निपट निकट प्रभु आहि॥"[5]

आलम ने लिखा है कि 'जिस व्यक्ति के हृदय मे प्रेम नहीं है वह मूख एव मतिहीन है। मनुष्य एव पशु के मध्य प्रेम ही तो एकमात्र भेदक रेखा है। प्रेम के तेज द्वारा ब्रह्म ज्ञान की भी प्राप्ति की जा सकती है। मानव शरीर तो अधकूप सदृश है। नेह' का दीपक जलने पर ही उसके रूप और गुणो का वास्तविक ज्ञान होता है।[6] पूण ब्रह्म भी प्रेममय है। अत प्रेम को

१ 'उतपति सष्टि प्रेम सो आई। सष्टि रूप भर प्रेम सोवाई।
जगत जनमि जीवन भल ताही पेम पीर उपजी जिअ जाही॥"
—मधुमालती स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त मित्र प्रकाशन इलाहाबाद, सन १९६१ पृ० २३

२ प्रेम जोति समसिष्टि अजोरा। दोसरन पाव पेम कर जोरा।"

३ प्रेम दिया जाके घर बारा। तोहिमम आदि अत उजियारा।"
वही पृ० २४-२५

४ प्रथमहि प्रनऊ प्रेम मय, परम ज्योति जो आहि।
—नन्ददास ग्रन्थावली स० श्रीव्रजरत्नदास ना० प्र० सभा काशी, पृ० ११५; स० २००६

५ वही, पृ० ४३

६ सो मतिहीन बज्र तनु होई। सग्रह नेहुन जीवै कोई।
मानुस पसु अतरु यह अहई। मानव सोई नहु जो वहई॥
ब्रह्मज्ञान पावै पुनि सोई। तिहि तन तेज नेह की होई॥
अधकूप मैं देहु गुप्त प्रकट कोई नहि लखहि।
जानै दीपक नेहु तब सब देख रूप गुन॥'
—हिन्दी प्रेम गाथा काव्य सग्रह स० गणेश प्रसाद द्विवेदी हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद, पृ० २१३

ही सर्वोच्च मानना पड़ता है।[1] प्रेम या इश्क के बिना इस ससार म रुचि नही हो सकती। जिसम इश्क नही उसमे कुछ भी नही। यही कारण है कि मुल्ला वजही ने 'इश्क का दर्जा सर्वोच्च स्वीकार करते हुए सवत्र उसका अस्तित्व स्वीकार किया है—

'बड़ा इश्क सबते दर्जा अहै। के यक जान हो इश्क हरजा अहै।।
जहाँ दो है वहाँ इश्क बिन रूप नही। नही इश्क कुच जिसम वो कुच नही।।'[2]

उसमान ने प्रेम के अमरत्व का वणन करते हुए लिखा है कि 'प्रेम रस का पान करने वाला युगयुगान्तर तक जीवित रहता है।'[3] क्योंकि वह प्रेम ज्योति सवप्रथम परमात्मा के ही मानस मे उत्पन्न हुई थी।[4] प्रेम के कारण ही उसने सष्टि रचना की।[5] कवि कासिम शाह का विचार है कि इस भव सागर को पार करने का एकमात्र साधन ग्रीवा मे प्रमपाश लगाना ही है।[6] इससे भी आगे बढ़कर नूर मुहम्मद ने तो उस व्यक्ति को दोनों लोको का स्वामी स्वीकार किया है, जिसने अपने मन मे प्रेम रस को जमा लिया है। प्रेममाग मे जीवन का बलिदान करने वाले यक्ति धन्य हैं। शेख निसार तो यह मानते हैं कि मानव का जन्म ही प्रेमाग्नि को सभालने के लिए हुआ

१ 'पूरन ब्रह्म प्रेम मय जानहु। सब ऊपर प्रेमहि पहिचानहु।"
आलमकृत श्याम सनेही, रीति स्वच्छन्द काव्यधारा पृ० ११९ से उदधृत

२ मध्यकालीन हिन्दी और पजाबी प्रेमाख्यान, डा० ओमप्रकाश, पृ० १९७ से उदधृत।

३ 'औ जो प्रेम अमी रस पीया। मर न मार जुग जुग जीया।
—चित्रावली, स० जगमोहन वर्मा, पृ० २३६

४ पहले उठा प्रेम विधि हीये। उपजी जोति प्रेम के कीये।"
—वही, पृ० ४

५ "आदि प्रेम विधिन उपराजा। प्रेमहि लागि जगत सब साजा।"
—मध्यकालीन हिन्दी और पजाबी प्रेमाख्यान पृ० ५ पर उद्धृत।

६ फासी प्रेम प्रीति की डारी। भव सागर से पार उतारी।'
कासिम शाहकृत हस जवाहर, पृ० ४

७ 'अलप प्रेम कारन जग कीन्हा, धन्य जो सीस प्रेम मँह दीन्हा।
जाना जेहिक प्रेम मह हीया, मर न कबहूँ सो मर जीया।
जा मन जामा प्रेम रस मा दोउ जग को राय।'
—इन्द्रावती स० श्यामसुन्दर दास ना० प्र० स०, काशी, पृ० ६
(१९०६ ई०)

और ईश्वर ने यह थाती वस ही सौंप रखी है जसे कि दीपक की वत्ती । ईश्वर उसी वत्ती मे आकर छिप जाता है और शरीर को जला कर पुन प्रच्छन्न हो जाता है—

"प्रेम अगिन तेहि काहु सभारा । रचा मनुस बहुविधि विस्तारा ॥
तेहि सौंपा वह प्रेम के थाती । दीपक माह धरा जस वाती ॥
तेहि वाती मँह आप छिपाए । होय परछिन पुनि देह जराये ॥"

कवि सूरदास लखनवी ने प्रेम को अमर बताया है[2] और लिखा है कि वेद और पुराण उसी का यशोगान करते हैं जिसका हृदय प्रम के उल्लझन मे उलझा हो, अन्यथा वाणी भ्रम में पड जाती है । प्रेम के अतिरिक्त उसके पास कुछ भी गाने को नही है—

"वेद वेद पुरानहि गाई । जिन मन पेय उरझ उरझाई ॥
नाहित ऐसे गए हिरानी । प्रम बिना।काछू न बखानी ॥"[3]

कबीरदास जी कहते हैं कि जिसने प्रेम रस को नही चखा और चख कर उसका रस्वास्वादन नही किया, वह सूने घर का पाहुन है जस वह इस लोक में आया वैसे ही चला भी जायेगा ।[4] कबीर प्रेम को भवसतरणाय अलौकिक मानते हैं । वह इसी प्रेमकल्लोलिनी के पावन कूल पर ढुलकन के लिए सदैव तयार रहते हैं—

'अकथ कहानी प्रेम की, कछू कही न जाई ।
गूगे केरी सरकरा, बठे मुसकाई ॥'[5]

यह प्रेम सवसुलभ है परन्तु इसका मूल्य चुकाने के लिए कोई रत्नराशि पर्याप्त नही । इसे प्राप्त करने के लिए शिर देना पडता है—

---

१ हिंदी प्रेमगाथा काव्य सग्रह स० गणेश प्रसाद द्विवेदी, प० ३२८, (१९५३ ई०)

२ 'प्रेम अमर यह मर न मारा । बुझे न पेम अगिनि बिनगारा ।' नलदमन (सूर लखनवी) स० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० १९३

३ नलदमन (सूर लखनवी स० वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० १९३

४ 'कबीर प्रेम न चखिया चखि न लिया साव ।
सूने घर का पाहुणाँ, ज्यू आया त्यू जाव ॥'
—कबीर ग्रन्थावली, स० डॉ० माताप्रसाद गुप्त पृ० १७

५ वही पृ० २९

"प्रेम न खेतो उपज प्रेम न हाट बिकाइ ।
राजा परजा जिस रुच, सिर दे सो ले जाइ ॥"[1]

उपयुक्त उदाहरणो से प्रकट है कि मर्मी कवियो के लिए प्रेम ईश्वर का पर्याय है।

इनकी दृष्टि मे मानव के कल्याणाथ प्रेम का वही स्थान था जो भक्त कवियो की दष्टि मे भगवान का उसमान न चित्रावली के अतिम दोहे में प्रेम माग की महत्ता को स्पष्ट करते हुए लिखा है--

"श्याम ध्यान मद्धिम सब जप तप सजम नेम ।
मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रति पार प्रेम ॥"[2]

प्रेम के इसी महत्व को महाकवि जायसी ने पश्चाताप करते हुए राघव चेतन के मुख से भी कहलाया है--

'कवि सो प्रेम तत कविराजा । झूठ साच जहि कहत न साजा ।'[3]

मनुष्य बिना प्रेम के एक मुटठी धूल से अधिक कुछ भी नही ।[4] जायसी ने वद्वावस्था की बुराई की है । कथ यत, वृद्धावस्था म यौवन नही रहता और मानव मानस प्रेम नही कर सकता है वे अत्यन्त सतप्त स्वर में कहते हैं कि लम्बी आयु अभिशाप है---

विरिध जो सीस डुलाव सीस धुन तेहि टीस ।
बूढी आऊ होतु तुम्ह किन्हपह दीन्ह असीस ॥"[5]

यौवन प्रमत्ता पद्मावती के सम्मुख समस्या दूसरी है । आयु का तकाजा प्रेम का है और समाज प्रेम मे पर रखने से रोकता है वह करे तो क्या करे--

'जोवन चचल दीठ है कर निकाज काज ।
धनि कुलवति जो कुल धर क जोवन मन लाज ॥'[6]

और अत मे वह कुल का परित्याग करने के लिए उद्यत सी है । यह सब

---

१ कबीर ग्रन्थावली, स० श्यामसुन्दर दास, ना० प्र० स० प० ७० (१९२८ ई०)

२ चित्रावली, स० जगमोहन वर्मा, प० ८९

३ पद्मावत (स० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल) प० ५६५

४ 'मानुस पेमु भएउ बकुठी, नाहित काह छार एक मूठी ।' ~जायसी ग्रन्थावली, प० ७१

५ वही, पृ० ३०२

६ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ७५

प्रेम प्रभाव के कारण ही हो रहा है ।

सृष्टि रचना प्रेम के कारण ही हुई है

नरमुहम्मद कहते हैं कि इस सष्टि की रचना प्रेम के कारण ही हुई है ।[1] अगर प्रेम न होता तो सष्टि की रचना न होती । जायसी भी कहत हैं–

'सुमिरौ आदि एक करतारु । जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह ससारु ॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू । कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू ॥'[2]

जायसी इस प्रेम को सरल सष्टि मे परियाप्त दखते हैं–-

"रोव रोव ते वान जो फूटे । सूतहि सूत रुधिर मुख छूटे ॥
ननहि चली रकत की धारा । कथा भीनि भएउ रतनारा ॥
सूरुज बूडि उठा होइ ताता । औ मजठि टेसू वन राता ॥
भा बसन्त राती वन सपती । औ राते सब जोगी जती ॥
भूमि जो भीनि भयउ सब गेरु । आ रातें तहँ परिव पखेरु ॥
राती सती अगिन सब काया । गगन मेघ राते तेहि छाया ॥"[3]

अन्यत्र वे कहते हैं–-

'अस पर जरा विरह कर गठा । मेघ साम धूम जो उठा ॥
दाया राहु केतु गाधा । सूरज जरा चाँद और आधा ॥
औ सब नखत तराइ जरहीं । टूटहि लूक घरति मह परही ॥
जरै सो धरती ठावहि ठाऊ । दहकि पलासि जरै तेहि दाऊ ॥'[4]

उपयुक्त वणित समस्त स्थितियो प्रेम के प्रभाव के कारण ही उत्पन्न हुई है । इस प्रेम म जब मनुष्य पडता है तो उसकी दशा अतीव शोचनीय हो जाती है । उसस न जीते बनता है और मरते बनता है–-

"कठिन मरन ते प्रेम व्यवस्था । न जिउ जिये न दसम अवस्था ॥ [5]

मझन ने तो प्रेम के महत्व के विषय मे कहते हैं कि जिसके हृदय में विरह ने घाव नहीं किया उसका जीवन धारण करना ही व्यथ है–-

---

१ अल प्रेम कारन जग कीन्हा । धनि सो सीस प्रेम मह दीन्हा ॥"
—इन्द्रावती, स० श्यामसुन्दर दास, पृ० ८

२ जायसी ग्रन्थावली पृ० १

३ वही पृ० ९८

४ जायसी ग्रन्थावली पृ० १६३

५ वही, पृ० ४९

"मझन जो जग जनमि कै बिरह न कीना चाउ ।
सूने घर का पाँहुणा जेउ आया तेउ जाउ ॥"[1]

जायसी की प्रेमानुभूति सबसे अधिक तीव्र है । उनकी पद्मावती कहती है कि मैं प्रियतम के पास शृंगार करके जाऊँ । मुझे तो प्रियतम सवत्र व्याप्त दिखायी देता है–

'करि सिंगार तापह का जाऊँ । ओही देखहुँ ठावँहि ठाऊ ।
नन माह है उहै समाना । देखो तहाँ नाहिं कोउ आना ॥'[2]

उसका दृढ़ विश्वास है ।

"उहु बानन अस को जो न मारा । बधि रहा सगरो ससारा ॥"[3]

कि तु सूरदास के श दो मे य सारी बातें गोपनीय हैं । जो इ हे जानता है, उसे ही ये *बतलानी चाहिए किसी दूसरे को नही–*

प्रेमी प्रीतम को मरम कहै न काहू पाँह ।
जान तहि जनाइए लोगन सो कछु नाँह ॥"[4]

प्रेम सभी वस्तुओ को लावण्यमय बना देता है

जायसी की रचना पदमावत का प्रेमगाथा द्वारा या 'अखरावट मे वर्णित सिद्धा ता द्वारा जिस प्रेम का परिचय प्राप्त होता है, वह अति उच्च एव गाम्भीय पूण है । उसके महत्त्व का ज्ञान हम सवप्रथम उस समय होता है जिस समय हीरामन ुक द्वारा पदमावती के रूप एव गुण का सक्षिप्त समाचार प्राप्त होते ही उसके प्रेम म पड़कर वह उठता है–

तीनि लोक चौदह खण्ड सब पर मोहि सूझि ।
प्रेम छाडि नहि लोन किछु जो देखा मन बूझि ॥"[5]

अर्थात अब मुझे तीनो लोक और चौदहो भुवन प्रत्यक्ष हो गये । मैंने अपने मन म समझकर यह दख लिया कि वास्तव म प्रेम के समान कोई भी वस्तु सु दर नही हो सकती । तात्पय यह है कि किसी भी सासारिक वस्तु मे ऐसी रमणीयता नही प्राप्त हो सकती जो प्रत्येक स्थिति अथवा दशा म भी

---

१ मधुमालती (मझन) स० डा० माताप्रसाद गुप्त प० २००
२ जायसी ग्रन्थावली, पृ० १४३ ।
३ वही, प० ४३ ।
४ नलदमन (सूरदास लखनवी), स० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल, प० ९१ ।
५ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ३९ ।

'एक हमारा होकर वतमान रहे । यहे प्रेम की ही विशेषता है ।

३५११ —मुहम्मद बाजी प्रेम के ज्या भावे त्यों खेल ।
तिल फूलहि के संग ज्यों होय फुलायल तेल ॥ '

कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेम की बाजी किसी भी प्रकार खेली जाय उसमें लाभ ही लाभ होना है । जैसे तिल के दाने, पुष्पों के सहवास के उपलक्ष्य में यदि मेरे भी जाते हैं तो अन्ततोगत्वा उनका रूप सुगंधित तेल के रूप में भी प्रकट होता है । प्रेम के कारण अथवा प्रेम के परिणाम स्वरूप दुख हो ही नहीं सकता । इसका तो नियम ही है–

'प्रेम के आगि जर जो कोई । दुख तेहि करन अविरथा होई ।'[२]

अर्थात प्रेम की ज्वाला में अपने को भस्मसात कर देने वाले का दुख कभी व्यर्थ नहीं जाता । कवि यहाँ व्यंजित करना चाहता है कि आध्यात्मिक प्रेम की ज्वाला में जलकर ही परमात्मा रूपी प्रियतम से भेंट होती है अर्थात अध्यात्म प्रेम की ज्वाला में ज्वलित होना व्यर्थ नहीं जाता । इस प्रेम के स्वरूप को मंझन ने भी स्वीकारते हुए कहा है–

'प्रेम दीप जाके हिय बरा । ते सब आदि अंत उजियारा ।
विरह जीव जाके घर होई । सदा अमर पुनि मर न कोई ।'[३]

अथवा–

'जनम जनम फल जीवन ताही । प्रेम पीर जिय उपजा जाही ।
जेहि जगत यह विरहा भयऊ । त्रिभुवन केर राउ सो कहेऊ ॥'[४]

उसके दुखों के साथ ही साथ सुख भी लगा ही रहता है जिस कारण उसके आनन्द में बाधा नहीं पड पाती–

दुख भीतर जो प्रेम मधु राखा । जग नहिं मरन सहै जो चाखा ॥'[५]

प्रेम का मधु दुःख से आवेष्टित है ।

। प्रेम की पीर के साथ ही जो माधुर्य अनुभव में आता है उसका स्वाद इतना तीव्र होता है कि उसके समक्ष ससार में मरण का कष्ट सहते सहते सह लेना कोई असम्भव बात नहीं । जो प्रेम मार्ग में शिर नहीं रखता उसका

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० २५
२ वही, पृ० ६५
३ मधुमालती स० डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २५
४ मधुमालती पृ० २९
५ जायसी ग्रन्थावली पृ० ४० ।

इस ससार मे जीवन ही व्यथ है। प्रेममाग के महत्व को जानता है जिसने देखा है। जिसने वह माग नही देखा है वह उसके महत्व को नही जानता है–

'जो नहि सीस प्रेम पथ लावा। सो प्रिथिमी मँह काहेक आवा।
प्रम वार सो कहै जो देखा। जा न देख का जान विसेखा॥'[1]

इस कारण प्रेम नितात एक समान समझा जाता है और इसकी एकरसता ही इसके वास्तविक रूप स सौ दय का कारण है। इस अनुपम गुण के ही सयोग स–

'मानुष प्रेम भएउ बकुठी। ना हित काह छार भर मूठी।'[2]

इस प्रम के ही कारण मनुष्य अमरत्व तक प्राप्त कर लेता है। नही तो बस मूठी भर छार मात्र से निर्मित मिटटी के पुतले से हो ही क्या सकता था। अतएव कवि को इस बात पर पूण विश्वास है कि जो प्रेम माग पर पथिक होकर पार पहुँच गया वह पुन मिटटी म ही मिलन के लिए इस क्षण भगुर शरीर को धारण नही कर सकता। वह अमर हो जाता है–

'प्रेम पथ जो पहुँच पारा। बहुरिन मिल आइ एहि छारा।'[3]

परन्तु प्रेम जितना ही सु दर और मनोहर है उसका माग उतना ही विकट एव दुगम है क्योकि इस प्रेम माग पर चलने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह अपन साधन की सफलता एव कठिनता को अपने विचार से एकदम निकाल दे। ऐसा करन के कारण प्राय देखा गया है कि उसके माग का ढग ही विभिन्न हो जाता है। वह जितना ही विपरीत माग से चले और जितना ही कष्ट झेले उतना ही स्वय को उद्देश्य की पूर्ति करता हुआ पाता है इसीलिए जायसी कहत हैं।

'उलटा पथ प्रेम के वारा। चढ सरग जो पर पतारा॥'[4]

प्रेम का माग ही विपरीत है क्योकि इसके द्वारा स्वग जान का अधिकारी

---

१ वही पृ० ४० (क) सूफी का य मे हमे भावो की व्यजना अनेक रूपों मे मिलती है-'जगत जा म जीवन फल ताही। प्रेमपीर जिय उपजा नाही -- मधुमालती प० ११, (ख) ऊधा बठक प्रम का जोरहीय सत होय। सो पाव सशय नही जाय पाय सब होय॥ –प्रेमरस शेख रहीम।

२ जायसी ग्रन्थावली प० ७१।

३ वही, पृ० ९२

४ वही, पृ० ९८

नही हो सकता है जिसने पहले अपने आपको पाताल मे डाल दिया हो। इस प्रम पथ का अनुसरण करने से पूर्व ही यह सोच लेना आवश्यक होता है कि अब हमे अपने दुख सुख की कोई परवाह नही करनी है। इसीलिए सिहल द्वीप जाते समय मार्ग म पडने वाले विस्तृत समुद्र को पार करने की कठिनाइयो का ब्योरा सुनकर प्रेमी राजा रत्नसेन, सहसा कह उठता है–

"राज कहा कीन्ह मैं प्रेमा। जहाँ प्रेम कह कुसल खेमा॥"[1]

अर्थात जब मैंने प्रेम मार्ग ग्रहण कर लिया है तो अब कुशल क्षेम या सुख सुविधा की बात सोचना ही व्यर्थ है। प्रेमकता को दुख झेलना ही पडता है। कवि ने इस बात को स्पष्ट करने के लिए अनेक स्थलो पर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं–

'प्रेम फाद जो परा न छूटा। जीउ दीन्ह पै फाद न टूटा॥
गिरगिट छद धरे दुख तेता। खन खन पीत, रात खिन सेता॥
जान पुछार जो भा बनवासी। रोव रोव परे फद नगवासी।
पाँन्ह फिरि फिरि परासो फाँदू। उडि न सकै अरुझा भा बादू॥
'मुयो मुयो अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नाग ह धै खाई॥
पडुक सुआ कंक वह ची हा। जेहिं गिउ परा चाहि जिउ दीन्हा॥
तीतिर गिउ जो फाद है, नित्तिपुकारै दोख।
सो कित हँकारि फाद गिउ (मेल) कित मारे होइ मोख॥"[2]

अर्थात प्रेम के फदे म जो पड गया वह कभी नही छूटता। प्राण देने पर भी उसके फदे का टूट जाना कठिन है। गिरगिट को अनेक कष्ट झेलकर भी क्षण क्षण पर पीत लाल अथवा श्वेत रग का होना पडता है। जिसके कारण उसके पख पर फदे के चिन्ह तक पड जाते हैं। वह बदी होकर उडने म असमर्थ हो जाता है। वह अहर्निशि मुयो मयो कह कर चिल्लाया करता है और क्रोध म दौड दौड कर सर्पों का भक्षण किया करता है। वह फद का

१ जायसी ग्रथावली पृ० ९२।
२ वही पृ० ३९–४०।
२ प्रीति फद का वर्णन अन्य सूफी कवियो ने भी किया है–
(क) 'प्रीति दया बस है ससारा। प्रीति फाँद सब फाद निहारा।
—नूर मुहम्मद कृत अनुराग बासुरी, पृ० ११७।
(ख) भूला सब जगत कर धधा। पडा जो आन प्रेम कर फदा।'
—कासिम शाह कृत हस जवाहिर पृ० ७२।

मि है। इसी प्रकार पडकर शुक और नीलकण्ठ पक्षियों के भी ग्रीवा में पडा दीखता है जिसके कारण उन्हें प्राण तक निसार करने पडते हैं। तीतर के गले पर लिखने वाला चिह्न इतना अशुभ सूचक है कि मानो उसके द्वारा इस बंधन स्वीकार करना पडता है अथवा मुक्त होने पर भी लडकर मरना ही पडता है अर्थात इस कहा भी शान्ति नही मिलती। भ्रमर तो इस मार्ग का पथिक होकर एकदम लुट ही जाता है। उसे प्राणों की भी आहुति देने पर छुटकारा नहीं मिलता। इसीलिए इस मार्ग का अनुसरण भरसक उसी को करना चाहिए जो उदासी यती योगी तपस्वी अथवा संन्यासी हो। क्योंकि भोग विलास में पडे हुए को ही यदि यहाँ सफलता मिल सकती तो ये लोग भोगो का परित्याग कर कठिन व्रत की साधना करने पर आरूढ क्या होते ? प्रेम प्राप्ति की सिद्धि केवल साधना करने मात्र से नहीं हो सकती इसके साथ साथ तप की साधना भी आवश्यक है। इस वही अनुभव कर पाता है जो अपने सिर को पहले धड से अलग कर डालता है। केवल कथनी से कुछ नही होता। घी निकालने के लिए दधि को पहले भली भाँति मथने की आवश्यकता पडती है। जब तक अपने आप को भी ढूढन-ढूढते न खो दे तब तक प्रेम के मर्म को नही पा सकता। प्रेमपहाड की रचना ही कुछ ऐसी विचित्र है कि उस पर चढने वाले को पगों द्वारा न चलकर शिर के बल जाना पडता है। यह वास्तव में सूली का मार्ग है। जिस पर या तो चोर चढाया जाता है अथवा मसूर। हल्लाज सदृश व्यक्ति का बलिदान होता है—

जानहि भवर जो तहि पथ लूटे। जीउ दीन्ह औ दिए न छूटे ॥

\+ + + +

ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी जती तपी संन्यासी ॥
भोग जोरि पाइत वह भोगू। तजि सो भोग कोइ करत न जोगू ॥
साधन्ह सिद्धि न पाइअ जौ लहि साधन तप्प।
सोई जानहि बापुरे जो सिर करहिं कलप्प ॥
का मा जोग कहानी कथे। निकस न घिउ बाजु दधि मथे ॥
जौ लहि आपु हेराइन्ह काई। तौ लहि हेरत पाव न सोई ॥
पेम पहार कठिन विधि गढा। सो प चढ सीस सौ चढा ॥
पथ सूरि ह कर उठा अकूरू। चोर चढ कि चढ मसूरू ॥[1]

---

१ पदमावत सं० डा० वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० १८०।

प्रेम के लिए समर्पण आवश्यक है

जिसने भ्रमर का रग धारण नहीं किया । जो दीपक देखकर पतगा नहीं बन गया जिस पर भृग का प्रभाव नहीं पडा अथवा जिसने अपने प्राणों का समर्पण नहीं किया और न जो प्रेम के कारण तपाया जाकर एक हो गया अथवा जिसके मानस में भय का लोप न हुआ, उसे प्रियतम के प्रति सच्चा अनुराग हो ही नहीं सकता, न वह उसके लिए आग या पानी में पड़ ही सकता है । जायसी कहते हैं–

"ना जेइ भएउ भौर कर रगू । ना जेइ दीपक भएउ पतगू ॥
ना जेइ करा भृग क होई । ना जेइ आपु मर जिउ खोई ॥
ना जेई प्रेम औटि एक भएउ । ना जेइ हिए माझ उर भएऊ ॥
तहि का काहिय रहब जिउ । रहै जो पीतम लागि ॥
जौं वह सुन लेइ धँसि का पानी का आगि ॥"[1]

प्रेम में पड जाने पर प्रेमी की अवस्था ही विचित्र हो जाती है । प्रेम के प्रभाव द्वारा अभिभूत होने पर प्रेमी की मनोवृत्ति इस प्रकार परिवर्तित हो जाती है कि इसे हिताहित की पहचान ही नहीं रह जाती–

"उपजी प्रेम पीर जेहि आई । पर ोधक होइ अधिक सो आई ॥
अमृत बात कहत विष जाना । प्रमक वचन मीठ क माना ॥"

अर्थात् जिस मानव मानस में प्रेम की कसक उठ गयी उसे यदि समझाया बुझाया जाय तो उस पर प्रभाव विपरीत ही पड़ता है । पीड़ा कम होने के स्थान पर बढ़ने लगती है । प्रेमावेश में उसे अच्छी से अच्छी बात बुरी जान पड़ती है और वह केवल प्रेम सम्बन्धी वार्तालाप को ही अपने अनुकूल समझा करता है । वह अपने शरीर तक की रक्षा के विचार से इस प्रकार उदासीन हो जाता है कि उसे किसी बात की चिन्ता ही नहीं रहती–

"जेहि के हिये प्रेम रग जामा । का तेहि भूख नीद बिसरामा ॥"

अर्थात् जिसके हृदय में प्रेम ने अपना रग जमा लिया है उसके लिए भूख निद्रा अथवा विश्राम प्राप्त करना असम्भव है । उसे शान्ति प्राप्त हो ही नहीं सकती । उसकी मानसिक स्थिति का वर्णन करता हुआ स्वयमेव रत्नसेन पद्मावती से कहता है हे प्यारी ! प्रेम वास्तव में, मदिरा के समान है । जिसके पान करने से जीवन मरण का भय एकदम जाता रहता है । इसका पान जिसने एकबार भी कर लिया उसके लिए यह ससार कुछ भी नहीं है । और वह प्रेम मद के कारण मस्त होकर इतस्ततः भ्रमण किया करता है । इसकी मादकता का प्रभाव वही जानता है जो इसका पान करता है और पान करके

---

१ जायसी-ग्रन्थावली पृ० ९९ ।

भी अतृप्त ही रहता है और पीते पीते निद्रामग्न हो जाता है । इसकी प्राप्ति जिसे एक बार भी हो गई वह इसके अभाव में रह ही नही सकता और सदा इसके लिये अधीर हुआ फिरता है । अपनी सारी सम्पदा को तिलाजलि देकर मानो वह मन में निश्चय कर लेता है कि चाहे सवस्व चला जाय किन्तु मैं इस रस का आस्वादन नही छोड सकता । अतएव वह अहर्निश स्वय को इसी रस मे सिक्त किये रहता है और अपने लाभ हानि का ईषमात्र भी चिन्ता नहीं करता ।"[1] यहां पर हम सूफियो का स्पष्ट प्रभाव पाते हैं क्योकि सुरा और सुन्दरी की मान्यता सूफिया मे ही है ।

प्रेम-द्वैत को अद्वैत कर देता है

प्रेमी अपने को एक प्रकार स पूणरपण खोकर अपना अस्तित्व ही नष्ट कर देता है । जिसे स्पष्ट करते हुए जायसी ने राजा रत्नसेन की अवस्था का चित्र इस प्रकार अंकित किया है--

"बूँद समद्र जस होइ मेरा । गा हेराइ अस मिल न टेरा ॥
रगहि पान मिला जस होई । आपहिं खोइ रहा होइ सोई ॥"[2]

अर्थात् जिस प्रकार बिन्दु का सिन्धु से समागम हो जाय और बहुत ढूँढने पर भी प्राप्त न हो सके अथवा जिस प्रकार ताम्बूल पत्र रगो मे मिल कर अपना अस्तित्व खो बठे उसी प्रकार राजा ने अपने को खोकर प्रेम मे मिला दिया और प्रेमी एव प्रेमास्पद दो से एक हो गये । प्रेम के प्रभाव का इससे उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है ? जिसका हृदय प्रेम बाणो से विद्ध है वही उसके मम को जानता है--

"प्रेम घाव दुख जान न कोई । जिहि लाग जान प सोई ॥"[3]

इसी प्रकार मझन ने भी लिखा है--

---

१ सुनु ! धनि प्रेम सुरा, के पिए मरन जियन उर रहै न हिए ।
जेहिं मद तेहि कहाँ ससारा, की सो घूमि रह, की मतवारा ।
सो पै जान पिय जो कोई पी न अघाइ जाइ परि सोई ।
जा कहँ होइ वार एक लाहा, रहै न ओहि बिनु ओही चाहा ।
अरथ दरब सो देह बहाई, की सब जाहु, न जाहु पियाई ।
रातिहुँ दिवस रहै रस भीजा, लाभ न देख, न देख छीजा ।
जायसी ग्रन्थावली, पृ० १४१

२ वही पृ० १४१
३ वही, पृ० ४९

"कठिन पीर यह जान सोई । प्रेम विछोह पराजेहि हाई ॥"[1]

मसूर अल हल्लाज ने ठीक ही कहा था । "ईश्वर से मिलन तभी सम्भव है जब हम कष्टा के बीच से होकर गुजरें ।"[2] क्रान्तिदर्शी कबीर पर भी सूफियो का प्रभाव पूणरूपेण पडा था । उनके प्रेम के आदश सूर हैं । कबीर के अनुसार प्रेम पथ पर चलना असिधारा पर चलना है प्रेम बहुत बडी चीज है । बडी चीज को पाने के लिये साधना भी बडी होनी चाहिए । प्रेम का यह व्यापार कुछ खाला का घर नही है । जब जी में आया चल पडे और बात बात पर मचल गये तथा फरमाईश पूरी हुई । यहाँ तो वही प्रवेश पान का अधिकारी है जो पहले सिर को उतार कर धरती पर रख दे—

"कबीर यह घर प्रेम का खाला का घर नाहिं ।
सीस उतारे हाथि करि सो पसे घर माहिं ॥
कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम-अगाध ।
सीस उतारि पगतलि धरे, तब निकट प्रेम का स्वाद ॥"[3]

जायसी ने प्रेम पथ पर चलने की बात को कुछ इसी प्रकार से व्यक्त किया है—

'गगन दिस्टि सो जाय पहूँचा । प्रेम अविष्ट गगन ते ऊँचा ॥
धुव ते ऊँच प्रेम धुव उआ । सिर देइ पाँव देइ सो छुआ ॥'[4]

खाला का घर समझने वालो को कबीर ने सावधान किया था । जायसी ने भी कहा है कि वहाँ पहुँचने के लिय सिर काटकर उस पर पैर रखना पडेगा । 'करब पिरीत कठिन है काजा' ।[5] प्रेम के पहाड पर वही चढ सकेगा जो सिर (अभिमान, अहभाव का परित्याग कर) देकर चढना चाह । उस पथ पर काम, क्रोध, तृष्णादि चोर बढमारी करते हैं । पथिक को उनस क्षण क्षण सावधान रहने की आवश्यकता होती है । यह प्रेम पीर प्रबोध' से सम्बद्धित होता है—

---

१ मधुमालती, पृ० ३५४
2 Out line of Islamic Culture A M A Shushtry P 311
हिंदी अनुवादक—म० यु० जायसी और उनका काव्य, शिवसहाय पाठक, पृ० ४१९ से उद्धृत ।
३ कबीर ग्रन्थावली स० श्री श्यामसुदर दास, पृ० ६९
४ पद्मावत स० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल पृ० १३८
५ जायसी ग्रन्थावली, पृ० ५०

"उपजी प्रेम पीर जेहि माई । परबोधत होइ अधिक सो आई ॥"[1]

अल फरावी का कथन है कि "ईश्वर स्वय प्रेम है । सष्टि रचना का मूल प्रेम है । सष्टि की इकाइया प्रेम के सहारे प्रेम के महास्रोत म जो पूण और सर्वोच्च है, डूब जाने के लिये पूणरूप से जुडी हुई है ।'[2]

चित्ररेखा' जायसी की सवश्रेष्ठ कलात्मक कृति है । इसमे भी जायसी ने अपनी प्रेम साधना का सविस्तार विवेचन किया है । चित्ररेखा म जायसी ने स्पष्ट कहा है—

"जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम ।
तब लगि हाथ न आवतप करम घरम सत नेम ॥"

अथात विरह का हृदय म उत्पन होना आवश्यक है । पद्मावत की समस्त कथा का केन्द्र बिन्दु प्रेम साधना ही है । डा० रामचन्द्र तिवारी भी कहते हैं । भावात्मक दष्टि से सूफी रहस्य साधना का केन्द्र बिन्दु प्रेम है । एक सूफी साधक ने इस सत्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि प्रेम ही सब रसो का मूल है ।' अगर इश्क न होता इतजाम आलमे सूरत न पकडता । इश्क के बगर जिन्दगी बवाल है । इश्क को दिल दे देना कमाल है । इश्क बनाता है इश्क जलाता है । दुनियां म जो कुछ है इश्क का जलवा है । आग इश्क की गर्मी है, हवा इश्क की बेचनी है, पानी इश्क की रफ्तार है खाक इश्क की कियाम है । मौत इश्क की बेहोशी है जिन्दगी इश्क की होशियारी है रात इश्क की नीद है दिन इश्क का जागना है । मुस्लिम इश्क का जमाल है, काफिर इश्क का जलाल है नेकी इश्क की कुरबत है, गुनाह इश्क से दूरी है बिहिश्त इश्क का शौक है, दोजख इश्क का जोक है ।"[5] शेखबुरहान मेहदी गुरु ने ही उन्हे प्रेमप्याला के पथ को दिखाया था—

'प्रेम पियाला पथ लखावा । आपु चाखि मोंहि बून्द चखावा ॥

---

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५१

२ A M A Shushtry Outline of Islamic Culture, P 311
हिन्दी अनु० मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य शिवसहाय पाठक, पृ० ४२० से उद्धत ।

३ स० शिवसहाय पाठक, चित्ररेखा, पृ० ९८

४ मध्ययुगीन काव्य साधना डा० रामचन्द्र तिवारी पृ० १३२

५ तसव्वुफ अथवा सूफीमत प० चन्द्रबली पाण्डेय पृ० ११६

प्रेम पियाला जिन्ह पिया, किया प्रेम चित बध ।
साचा मारग जिन्ह लिया तजि झूठा जगन्ध ॥"[1]

जायसी ने प्रेम की महत्ता को प्रदर्शित करते हुए स्वयं को प्रेम मधु और भ्रमर कहा है—

'मुहम्मद मलिक प्रेम मधु भौरा ।[2]

उन्होने प्रेम प्रीति का अन्त तक निर्वाह किया है—

"हाथ पियाला साथ सुराही । प्रेमप्रीति लइ ओर निवाही ॥"[3]

प्यारे सैयद अशरफ की कृपा से उनके मानस मे प्रेम दीप प्रज्वलित हुआ था—

"लेसा हिये प्रेम कर दीया । उठी जोति मानिर मल हीया ॥'

हीरामन शुक द्वारा वर्णित पद्मावती के नखशिख वर्णन के अनन्तर राजा रत्नसेन के हृदय मे प्रेमभाव का उदय होता है । अपना राजपाट सुख वैभव भोग आदि का परित्याग करके जोगी बन जाता है और तब तक प्रयत्न करता है, जब तक उसे प्राप्त नही कर लेता । चित्तौर से सिहल तक का मार्ग एक प्रकार से प्रेम पथ ही है । इस पर वह विघ्नो अन्तरायो और प्रत्यूहो का प्रत्याख्यान करता हुआ गतिमान होता है—

"प्रेम सुनत मन भूल नराजा । कठिन प्रेम दइ सो छाजा ॥
प्रेम फाँद सो परा न छूटा । जीउ दीन्ह बहु फाँद न छूटा ॥[5]

पद्मावती का रूप वर्णन सुनकर राजा मूर्छित हो जाता है । इस प्रेम प्रभाव को भला कौन जान सकता है—

"प्रेम घाव दुख जान न कोई । जेहि लागै जानै प सोई ॥
परा सो पेम समुद अपारा । लहरहि लहर होइ विस मारा ॥"[6]

प्रारम्भ मे प्रेम प्राय वासनात्मक होता है । विरह की तपाग्नि म प्रज्वलित होकर प्रेमी द्वादशवर्णी कम्पन की तरह कान्तिमान हो जाता है । हीरामन शुक से पद्मावती ने कहा कि यदि म चाहूँ तो उससे आज ही मिल सकती

१ चित्ररेखा स० प शिवसहाय पाठक पृ० ७४
२ वही पृ० १०३
३ चित्ररेखा पृ० ७५
४ जायसी ग्रन्थावली—पृ० ७
५ वही, पृ० ९७
६ वही, पृ० ४९

हूँ परन्तु अभी तक उसे मेरे प्रेम का मम ज्ञात नही है। मुझे अभी पूणत ज्ञात नहीं है कि वह प्रेम के रग म पूणरूपण रग चुका है या नही--

"ऐसो मरमु न जानै मोरा। जानै प्रीति जो अरि के जोरा॥
हौं जानति हौ अब हो कांचा। ना वह प्रीति रग थिर रांचा॥
ना वह भयउ मलय गिरि बासा। ना वह रवि चढ़ि चढ़ा अकासा।
ना वह भयउ भोर के रगू। ना वह दीपक भयउ पतगू॥
ना वह करा भृ ग के होई। ना वह आपु मरा जिउ सोई॥"[1]

इस प्रकार जब दोनो का मिलन हो जाता है तो प्रेमी मर कर भी अमर हो जाता है।

प्रेम एक एसा अमर, एव शाश्वत सत्य है जिसका कभी भी अस्त नही होता। अलाउद्दीन और राघव कहाँ है? रत्नसेन और हीरामन कहाँ हैं? वह सुरूपा पद्मावती कहाँ है? वे सब नही रहे पर उनकी प्रेम कथा ससार में है--

'कहु सुरूप पद्मावति रानी। कोइ न रहा जग रही कहानी।
धन सोई जस कीरति जासू। फूल मर पर मर न बासू॥'[2]

प्रेम माग के पथिक के लिए हृदय की पवित्रता परमावश्यक है। कल्याण युक्त हृदय से प्रेम प्रभु की प्राप्ति असम्भव है। महादेव जी ने रत्नसेन को उप देश दिया था कि दुःख सहो परन्तु प्रेमपथ पर गतिमान रहो--

'कहेसि न रोव, बहुत तै रोवा। अबईसर भा दारिद सोवा॥
अबत सिद्ध भरसि सिधि पाई। परपन भया छूटि गल काई॥
कहो बात अब हो उपदेसी। लाउ पथ भूले पर देसी॥'[3]

प्रेम पथ के पथिक के हृदय म क्रोध, ईर्ष्या आदि के लिए स्थान नही रहता। वह सहिष्णु उदार और तपस्वी हो जाता है--

"गुरू कहा चेला सिद्ध होई। प्रेम वार होइ करहु न कोई॥
जाकहू सीस जाइ कै बीज। सग न होइ उम जो भीज॥
जेहि जिउ पेय पानि पा सोई। जहि रग मिल ओहि रग होई॥
जो प जाइ पेम सो जूझा। कित तप करहि सिद्ध जो छूझा॥
सीस दीन्ह प अगमन, पेम पानि सिर मेलि।
अब सो प्रीति निबही, चलो सिद्ध होइ सेलि॥"[4]

---

१ जायसी ग्रथावली पृ० ९९
२ वही, पृ० ३०१
३ वही पृ० ३०१
४ वही पृ० १०४

प्रेम की अग्नि को प्रज्ज्वलित करना जीवन का लक्ष्य है

प्रम निरतर जलने वाली वह ज्वाला है जो प्रेमी के हृदय मे विरह का सचार करके उसे उज्ज्वल एव पवित्र कर देती है । जायसी ने कहा है—

"मुहम्मद चिनगी प्रेम क सुनि महि गगन उराइ ।
धनि विरही औ धनि हिया तह बस अगिनि समाइ ॥'[1]

जिसके हृदय में विरह की निष्पत्ति होती है वह व्यक्ति धन्य धन्य हो जाता है । 'प्रत्येक स्थान पर ज्योतिमय नग उत्पन्न नही होते । सवत्र जल में मुक्ता नही मिलती । प्रत्येक वन मे चन्दन के वृक्ष नही होते ।"[2] वसे ही प्रत्येक मानव मानस म प्रेमजनित विरह की भावना भी उत्पन्न नही होती । भाग्य शाली व्यक्ति ही इस विरह जनित प्रेम प्रभाव का अनुभव करते हैं—

"थल थल नग न होहि जेहि जोती । जल जल सीप न उपनहि मोती ।
वन वन विरिछ म चन्दन होई । तन तन विरह म उपजै सोई ।"[3]

जायसी व्यथ की तपश्चर्या तथा बाह्याडम्बर को महत्त्वहीन समझते थे । मन में विरह का होना वे प्रेम प्रभु के लिए आवश्यक मानते थे । बिना विरह के प्रेम नही उत्पन्न होता--

"का भा परगट कथा परवारे । का भा भगति भुई सिर मारे ॥
का भा जटा भमूत चढ़ाये । का भा गेरू कापटि लाये ॥
का भा भेस दिगम्बर छोट । का भा आपु उलटि गए कौट ॥
जो भेरवाहि तजि मौन तू गहा । ना वग रहै भगत वे चहा ॥
पानिहि रहैं मच्छि औरादुर । टाँगे नितहि रह पुनि गादर ॥
पसु पछी टांगे सब खरे । भसम कुम्हार रहै निज भरे ॥
वट पीपर सिर जटा न थोरे । अइस भेस की पावसि भोरे ॥
जब लगि विरह न होइ तन हिये न उपजइ पेम ।
तब लगि दाध न आव तम करम धरम सत नेम ॥'[4]

जायसी बाधा, डर और प्रेमरहित साधना की निस्सारता के विषय म लिखते हैं । प्रकट रूप से काया प्रक्षालन से कोई लाभ नही होता धरा पर

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ७८
२ शाले शाले न माणिक्य मौक्तिक न गजे गजे ।
साधव नहि सवत्र चन्दन न वन–वन ॥
३ जायसी ग्रन्थावली पृ० १०६ ।
४ चित्ररेखा स० डॉ० शिवसहाय पाठक, पृ० ९८

शिर पटकने वाली साधना व्यर्थ है। जटा और भभूत धारण करने का कुछ भी महत्त्व नहीं। गेरिक वस्त्र धारण करने से कोई अभिप्राय नही दिगम्बर योगियो के समान भी रहना व्यर्थ है। कटक पर उत्तान शयन करना और साधक होने का स्वाँग करना भी व्यर्थ है। मौन ग्रहण करना भी व्यर्थ है। बकुले भी मौन बनकर भक्त होते हैं। नीर में ही तो मत्स्य और ददुर रहते हैं। गादुर पक्षी भी तो स्वयं को टाँगे रहता है। कुम्भकार भी तो भस्म से सना रहता है। क्या वट या पीपल के वक्ष में कम जटाएँ हैं? अरे भोले! ऐसे वेश मे कहीं कुछ प्राप्त होता है जब तक हृदय में विरह नहीं होता। तब तक प्रेम की निष्पत्ति नहीं होती है। बिना प्रेम के तप कर्म धर्म और सत नेम की प्राप्ति सभी अर्थो मे नही होगी। इसमें यह पूर्णरूपेण स्पष्ट है कि जायसी सहज प्रेम साधना को ही सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

प्रेम के साथ विरह का शाश्वत सम्बन्ध बताते हुए प्रेम की महत्ता को स्पष्ट करते हुए डॉ० रामचन्द्र तिवारी कहते हैं। प्रेम की लता के साथ विरह की अग्नि का सम्बन्ध स्वाभाविक है। प्रेमी को विरहाग्नि भी सरस प्रतीति होती है। सच्चा कवि वही है जिसके काव्य मे प्रेम मधु का अमूल्य रस भरा हुआ है, जिसकी वाणी मे विरह की वेदना हैं। प्रेम का कवि ही सच्चा कवि है, उसके शरीर मे न रक्त रहता है न माँस। वह समस्त व्यक्त प्रकृति को अव्यक्त और रहस्यमयी सत्ता के प्रेम मे व्याकुल और मिलने के लिए उत्सुक देखता है। उसे सर्वत्र प्रेम की लालिमा दिखायी देती है। वह चराचर को रहस्यमयी सत्ता के प्रेम बाणो से विद्ध अनुभव करता है। जायसी ऐसे ही प्रेमकवि थे।[1] जायसी ने स्वयं कहा है—

"मुहम्मद कवि जो प्रेम का ना तन रक्त न माँसु।
जेइ मुख देखा तइ हमा सुना तो आए आँसु।।"[2]

प्रेम के अभाव मे भागी साधनायें और पाण्डित्य व्यर्थ हैं

बिना प्रेम भाव के जीवन निस्सार है। जिस मानव मानस मे प्रेम नही, उसमे कोई (व्यक्ति या ईश्वर) किस प्रकार आ सकता है। भला सूने गाँव मे कोई जाता है—

'बिना प्रेम जो जीव निवाहा। सूने गाँउ मो आव काहा?'[3]

---

१ मध्ययुगीन काव्य साधना डॉ० रामचन्द्र तिवारी, पृ० १०४

२ जायसी ग्रन्थावली पृ० ९

३ चित्ररेखा, स० शिव सहाय पाठक, पृ० १४७

मलिक मुहम्मद जायसी प्रेमपथ के महान् साधक थे। हुतसला नामा मे भी उन्होंने प्रमपथ की महत्ता को दृष्टिपथ म रखा है। जायसी ससार को असार मानते थे। उनका जीवन सदेश है कि समार म रहकर मानव के लिए जो कुछ भी करणीय है उसे कर लेना चाहिए। उसे प्रेम प्रभु की ओर गतिमान होना चाहिए। उसे प्रेम स्वय को खो देना चाहिए। अ ततोगत्वा इस जगत के जजाल को छोडकर जीव को जाना ही है--

कर ले आजु अहै जो करना। धधा छाडि आखिर है मरना॥'[1]

जब जीव प्रम प्रभु स मिलन जाता है तो उसके साथ इस असार ससार स धधा, पोथा आदि कोई भी वस्तु नही जाती केवल प्रेम ही जाता है—

'ध धा पाथि जाइब नहिं साथ'[2]

जायसी प्रम की महता को प्रतिपादित करते हुये कहते है कि करोडो पोथियो का अध्ययन करके सारे मानव परलोक वासी हो गये परन्तु कोइ भी पडित नही हुआ। पण्डित वही हुआ जिसने प्रेम की पुस्तक को पढा और समझा

'कोटिक पोथी पढि मरे पण्डित भाने कोई।
एक अच्छर प्रेम का पढ सो पण्डित होई॥'

समकालीन कबीर ने भी प्रेम की महत्ता को स्वीकार किया है–

'कबीर पोथी पढि–पढि जग मुवा पण्डित भया न कोइ।
ढाई अच्छर प्रेम का पढ सो पण्डित होइ॥'[4]

जायसी कहते है कि इस जगत म प्रेम ही सब कुछ है। प्रेम के द्वारा ही मनुष्य स्वग का अधिकारी होता अगर उसने प्रेम नही किया तो वह एक मुट्ठी राख के सिवा और क्या है ?[5] जामी की एक कविता म कहा गया है कि इस ससार म तुम सकडो उपाय कर सकते हो लेकिन एकमात्र प्रेम ही ऐसा है जो तुम्हारे अह स भी तुम्हारी रक्षा करेगा।[6]

इस प्रकार हम देखते है कि जायसी ने स्थान स्थान पर प्रेम के

१ चित्ररेखा स० शिवसहाय पाठक पृ० १३५
२ वही पृ० १५२
३ वही पृ० १४१
४ कबीर ग्रथावली डा० मानाप्रसाद गुप्त पृ० ६५
५ मानुस प्रेम भयउ बकुठी। नाहित काह छार एक मूठी॥
—जायसी ग्रथावली पृ० ७१
६ जायसी डा० रामपूजन तिवारी पृ० ८५

महत्त्व का स्पष्ट किया है। कभी प्रेमी जीव के लिय अग्नि भी च दन है[1] और कभी प्रेम सुरापान कर लने पर जीव को जीवन मत्यु के भय स मुक्त घोषित करते हैं।[2] प्रसिद्ध सूफी कवि रूमी न कहा है—

'It is the flame of love that fired me
It is the wine of love that inspired me '

यह उत्कृष्ट प्रेम ही साधक को साध्य तक पहुँचा सकता है। इसीलिय जायसी ने प्रेम कथा के माध्यम स प्रेम के दि य स्वरूप की प्रतिष्ठा की है और सवत्र यह घोषित किया है कि तीनो लोक और चौदहो भुवन म प्रेम को छोडकर और कुछ भी सु दर नहा—

तीन लोक चौदह खण्ड सब पर मोहि सूझि।
प्रेम छाडि किछु और न लोना जो देखी मन बूझि॥[4]

---

१ जेहि जिय पम च दन तेहि आगी।

—जायसी ग्र थवली प० ६४

२ 'सुनु ' धनि प्रेम सुरा के पिए। मरन जियन डर रहै न हिय॥

—वही, प० १६१

३ मध्ययुगीन का य साधना डा० रामच द्र तिवारी प० १२३ पर उद्धत।

४ जायसी ग्र थावली, पृ० ३९

६ मधुर भाव की साधना और जायसी का प्रेमतत्व

मधुर भाव मानव मन की सहज वृत्ति की परिणति है। इस भाव मे भक्त और भगवान, ब्रह्म और उसकी शक्तियो के पारस्परिक मधुर भाव बंधन की अभिव्यंजना होती है। मधुर भाव की सम्प्राप्ति के लिए अनुरागी मन की आतुरता, निस्सीम आनंद सागर में निमग्न रहकर सतत रसास्वादन की आकांक्षा सर्वत्र पायी जाती है। इस भाव को जानने के लिए प्रेम दृष्टि आवश्यक है। यह दृष्टि प्राप्त कर लेने पर ज्ञान द्वारा अगम्य ब्रह्म प्रेम में बंधकर प्रत्यक्ष अनुभव का विषय बन जाता है। इस भाव की विलक्षणता यह है कि भगवान स्वयं प्रेम स्वरूप होकर भी प्रेम के याचक बने रहते हैं। वे स्वयं रस स्वरूप होते हुए भी रस के अभिलाषी हैं और स्वयं आनन्द स्वरूप रहते हुए रस पाकर ही आनंदित होते हैं।[1]

मधुर भाव का संस्थान जीवात्मा और परमात्मा का सहज विलास, ब्रह्म, और उसकी शक्तियो की आनन्द केलि भक्त प्रेयसी और भगवान प्रियतम की प्रेम-लीला ही है। सर्वदा से विभिन्न साधना मार्गों द्वारा इसी दिव्य विषयक प्रेम प्रतीति को *लीला के दुग्ध रस से परितृप्त किया गया है।* ऋग्वेद के कई मंत्र घोषित करते हैं कि सृष्टि का आदिस्रोत साम अर्थात् मधु का कोई अनंत समुद्र है जिसकी मधुमान ऊर्मि अर्थात् आनंदमयी लहर ही जीवन है।[2]

सोम अत्यन्त सरस, सुस्वादु एवं तीव्र होता है जो माधुमनिंद से मानव प्राण में मधुर आनंद का उन्मेष करता है जिससे प्राण परितृप्त होते हैं।[3] इन्द्र

---

१ तैत्तिरीयोपनिषद्–२/७

२ समुद्रादूर्मिमधुमां उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट —ऋग्वेद ४/५८/१

३ स्वादुष्किलायं मधुमां उतायं तीव्र किलायं रसवां उतायम्'–ऋग्वेद ६/४७/१

अर्थात प्राणतत्व उस स्वादिष्ट, मधुमान तीव्र और रसवान साम' के पान के लिए आतुर रहता है ।

वैदिक साहित्य म अ यत्र भी मधु' श द परमात्मा के लिए व्यवहृत किया गया है । ऋग्वेद म ही एक स्थल पर ऐसा प्रसग आता है जिसम दध्यद अथ वण ने स्वय मधु ब्रह्म स सम्बद्ध ज्ञान को अश्विनीकुमारो क प्रति मधुविद्या' के रूप म ही दिया था[1] जिसकी चर्चा बृहदारण्यकोपनिषद म की गयी ।[2] फलत कहा जा सकता है कि परमात्मा ही सब कुछ सारतत्व है, सबका अ तिम लक्ष्य है तथा वही सच्चा परमान द है । उसम लीन होना सभी का परम ध्येय होना चाहिए तथा उससे मिलन की चेष्टा ही सबक लिए मधुर भाव कहला सकता है ।[3] यही ब्राह्मी स्थिति है जिसका वणन श्रीमदभगवदगीता म किया गया है और जिसकी अनुभूति भी शृगारिक जसी बतलाइ गई है ।[5]

मानव मन को आप्लावित करने वाली रति कइ प्रकार स मानवीय सम्ब धो द्वारा प्रत्यक्षानुभूत होती है । रति के दो क्षत्र–भोग और भक्ति है । इन दोना क्षेत्रो मे शात दास्य सख्य वात्सल्य और दाम्पत्य (मधुर) भाव के सम्ब ध प्रमुख माने गये हैं ।[6] इन पाँचा म मधुरभाव सर्वाधिक महत्वपूण है क्योकि इसम आत्म समपण भाव का चरमोत्कष अन य प्रेम की आसक्ति और अत्यधिक अ तरगता विद्यमान रहती है । इसी परिप्रेक्ष्य म क्रमश शा ता प्रीता, प्रेयसी अनुकम्पा और का त पाच प्रकार की भगवदविषयक रति होती है । शातभाव म विरक्ति से य सेवक भाव म अनुवृत्ति का सख्यभाव म प्रीति का वात्सल्य म स्नेह की प्रधानता है । मधुरभाव मे इन सब का समावेश हो जाता है । इसके अतिरिक्त इसमे प्रियतम को सुमधुर रति प्रदान करन की विशेषता रहती है । शृगार रस मे सर्वाधिक माधुय होने के कारण मधुर भक्ति अथात प्रेमभक्ति सवश्रेष्ठ है । प्रेमभक्ति गुणरहित कामनारहित, प्रतिक्षण वद्धनवाला

---

१ दध्यडह य मध्वाथवणा वामश्वस्य शीष्णा प्रयदामवाच ऋग्वद १/११६/१२
२ बहदारण्यकोपनिषद ४/३/२१
3 Vedic Culture Swami Manadevananda Giri P 361
४ श्रीमदभगवदगीता २/५५–७२
५ बहदारण्यकोपनिषद ४/ /२१
६ चत य चरितामत मध्य लीला, प०२५२
७ सा भक्ति साधन भाव प्रमाचति त्रिधाचिता'

—भक्तिरसामत सिंधु, पूव लहरी, २/१

विच्छेद रहित तथा स्वसवेद्य है । इसे पाकर प्रेमी प्रेम को ही देखता है, प्रेम को ही सुनता है चिंतन करता है ।

निष्कपत मधुरभाव का ।वास्तविक स्रोत भक्तिशास्त्र है । इस प्रकार मधुरभक्ति भक्त के विमल मानव से नि सत दिव्य प्रेम की वह उज्ज्वल रस की धारा है जिसके प्रवाह मे लौकिक प्रेम का विषयान द अपने समस्त कलुषो का प्रक्षालन कर अलौकिक प्रेम के ब्रह्मान द म परिणत हो जाता है । लौकिक प्रम का पारलौकिक प्रेम म रूपा तरित हो जाने का तथा लौकिक प्रेम प्रतीका द्वारा अलौकिक प्रेमाभि यजन का यही रहस्य है ।

माधुय भाव मे सरसता, मधुरता प्रे म की तीव्रता तथा अखण्डान द का आस्वाद विद्यमान रहता है । अत साधको हतु अत्य त स्पहणीय है । इसमे साधक का ताभाव गापीभाव और सखीभाव म मधुरस का आस्वादन करता है जिसम प्रेम के अनुभति की तीव्रता त मयता की दष्टि से का ताभाव सवश्रेष्ठ है । हि दी भक्ति साहित्य की सभी धाराआ पर मधुर उपासना का प्रभाव लक्षित किया जा सकता है ।

हि दी भक्ति साहित्य मे मधुरोपासना

हि दी साहित्य मे सबसे पहल निगु ण भक्ति धारा का उल्लेख किया जाता है । इस भक्तिधारा मे भी परमसत्ता को प्रिय रूप म देखा गया है । उसे प्रेम का विषय बनाया गया है । प्रे म के आधार पर उससे अद्व तता स्थापित की गइ है । अत निगु ण भक्तिधारा मे भी मधुरभाव की साधना का स्वरूप लक्षित किया जा सकता है ।

निगु ण सतो की भक्ति मे मधुर भाव

निगु ण सता म अग्रणी कबीरदास ने अपने को राम की बहुरिया और राम को अपना प्रिय मानकर मधुभाव की अभि यक्ति की है । कबीरदास राम की इस प्रम साधना मे मधुर भाव की साधना के सभी तत्व प्राप्त होने हैं । प्रिय का सौ दय चित्रण, प्रिय मिलन की आतुरता मिलन प्रसगो की उदभा वना प्रे म चर्या, मिलन के आन द का अनुभव प्रिय वियोग वियोग व्यथा मे प्रिय क स्वरूप का ध्यान आकुलता और अ तत प्रिय का शाश्वत सान्निध्य प्राप्त कर उनसे अभदात्मक सम्ब ध स्थापित कर लना यह सभी कुछ कबीर की प्रम साधना म लक्षित होना है । सगुण ब्रह्म को मा यता न दन क कारण कबीरदास प्रेम क्रीडा का वह प्रत्यक्ष लोकव्यापी विस्तार न दिखा सके जो कृष्ण भक्तों एव रामभक्ता न दिखाया कि तु तत्वत उनकी साधना म मधुरभाव की

साधना की मौलिक विशेषता म विद्यमान है।

विष्णु के अवतार राम कृष्ण को लेकर वष्णवभक्ति की दो शाखाएँ हो गयी। कृष्णभक्ति शाखा और रामभक्ति शाखा। कृष्णभक्ति शाखा मे मधुरभाव की उपासना को अधिक महत्व दिया गया है।

कृष्ण काव्य म माधुर्य भाव

भगवान कृष्ण गोपिया के साथ नित्यलीला मे रत रहते हैं और अपनी ऐश्वयमाधुरी क्रीडामाधुरी वणमाधरी, विग्रहमाधुरी का पान भक्तो को कराते हैं। क्रीडामाधुरी म गोप लीला सवश्रेष्ठ है। वेणुमाधुरी के जादूभरे प्रभाव से सभी परिचित हैं। इस वेणु सगीत को सुनकर तो गाय पक्षी, मग और वक्ष तक पुलकित हो जाते हैं तब कौन मुग्ध न हो जाय।[1] कृष्ण को ब्रह्म का अवतार मानकर उनकी भक्ति के प्रचारक निम्बार्काचाय विष्णुस्वामी और माधवाचाय थे।[2]

कृष्णभक्ति का माधुय पक्ष सख्य या दाम्पत्यभाव पर आधारित है। इसम राधाकृष्ण समान रूप से आलम्बन और आश्रय रूप मे चित्रित हुए हैं।[3] अत कृष्ण का रूपमाधुय भी उसी त मयता, पूणता और विपन्नता से हुआ है जिस भावलीनता, विस्तार और पूणता स राधा का।

कृष्ण का रूप सौ दय विविध रगा, अभूतपूव कल्पनाओ अलौकिक प्रभावा तथा अभिनव ज्योति रश्मिया को लेकर प्रत्यक्ष होता है। राधा की यौवन सुषमा भी इतने रगो म नही झाँकती दीखती। नायक और नायिका यह रूप चित्रण कृष्णकाव्य की मौलिक विशेषता है। इस रूप चित्रण के मूल म मधुभाव की साधना ही प्रधान कारण है। मधुर भाव की इस साधना को प्रत्यक्ष और व्यापक आधार देन के लिए प्रमचर्या को ही माध्यम बनाया गया है। प्रेमचर्या के अन्तगत प्रियदशन प्रेमोदय पूवराग मान प्रिय के आकषण का प्रभाव तथा प्रिय समागम के अनेक अवसरो एव प्रसगा की उदभावना की गई है। राधा और कृष्ण की प्रेमचर्या को कृष्ण भक्तो ने मधुरभाव की साधना का प्रतीक बनाया है। कृष्ण के जीवन विकास म अनेक प्रकार की लीलाओ की कल्पना वस्तुत इस मधुर भावना को व्याप्ति दने की दष्टि से की गयी है। गादोहन गोचारण चीरहरण दधिदान माखनचोरी आदि लीलाए मधुर

१ श्रीमदभागवत, १०/२९/४०

२ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय—दीनदयालु गुप्त—पृ० ४५, भाग—१

३ राधावल्लभ सम्प्रदाय—विजयेन्द्र स्नातक, पृ० २१०—११

भावना का मूर्त करती हैं। इस मधुर भावना को मूर्त करने का सर्वश्रेष्ठ आधार रासलीला है।

रासलीला

रासलीला महाचिति का नर्तन है। यहीं सौन्दर्य, उल्लास, चेतना और आत्मलीनता की झंकार है। महाचिति का महासौन्दर्य अल्पज्ञ जीव के लिये अलभ्य है। इसे भक्त सुलभ बनाने के लिए ही महाप्रभु वल्लभाचार्य ने पुष्टि मार्ग की स्थापना की।[1] पुष्टजीव को ही भगवान की अनुकम्पास्वरूप महाचिति का यह महासौन्दर्य प्राप्त होता है। रास मे ब्रह्म और जीव का मिलन होता है। इसमे जीव के अहं का तिरोभाव और भगवान के सायुज्यभाव का आविर्भाव होता है। राधा और गोपियो को त्याग कर कृष्ण का अन्तर्धान हो जाना यह संकेतित करता है कि उन्हे अपने सौन्दर्य और यौवन का अहंकार न हो।[2]

मिलन और सम्भोग

मिलन शृंगार मे नायक नायिका के गोपनीय विलास का चित्रण रहता है। उद्दाम काम चेष्टाएँ, केलि क्रीडा, अभिसार मान मनुहार आदि रति के बाद की अवस्था का चित्रण-ये सब एकान्तिक पक्ष मे समायोजित किये जा सकते हैं। स्वामिनी के रति सुख के रसासव का पान ही तो उन साधकों की सबसे बडी सिद्धि है जिसके समस्त प्रकार के ऐश्वर्य तिरस्कृत हो जाते हैं, यहां तक कि मोक्ष भी।

सम्भोग मिलन मे दो रूप उपस्थित होते हैं—प्रथम सखी या दूती द्वारा भेंट कराना और राधा का केलि भवन या संकेत स्थल पर पहुँचाना। द्वितीय, नायक-नायिका (कृष्ण राधा) का स्वयं संभोगार्थ मिलना।

सूर की राधा मे संयम और संकोच अधिक नहीं पाया जाता। राधाकृष्ण दोनो ही समान काम कातर और रति सक्रिय हैं। प्रथम भेंट मे ही राधा के उरोजो और नीवि पर कृष्ण के आकुल हाथ पडते हैं।[3] प्रायः सभी कवियों ने मर्यादाहीन अश्लील चित्रण किया है।

---

१ सूर सौरभ-मुन्शीराम शर्मा पृ० ३११

२ सूरसागर-पद १७०६ १७११ १७१८ तथा १७२०

३ नीवी ललित गही जदुराई।
जबहि सरोज धरयो श्रीफल पर तब जसुमति गई आई॥
+ + +
काहू को सकझोरत नोयौ काहू न कछु बताई। -सूरसागर, पद ११००

भक्तों की रसलीनता

कृष्ण काव्य का माधुर्य पक्ष भावलीनता का ऐसा लोक है जहाँ अपरिमित मूर्च्छना की स्वर झंकार है आनन्द विस्मृत में अहंभाव का तिरोभाव है। लीला माधुर्य में वासनाओं का अतल विलय है।

माधुर्यभाव की भक्ति को भागवतकार, महाप्रभु चैतन्य वल्लभाचार्य, जीवगोस्वामी और अन्य कृष्णभक्त कवियों ने इसीलिए श्रेष्ठ माना क्योंकि दाम्पत्य ही सर्वाधिक लीन करने वाला भाव है। जिस रस के देवता स्वयं परब्रह्म विष्णु हों वह कितना आनन्द समृद्ध हो सकता है इसकी कल्पना स्वयं की जा सकती है। इसीलिए रतिभाव को माधुर्य नाम देकर भक्ति में सर्वोच्च स्थान दिया गया।

माधुर्य भाव को काव्य के किसी भी रूप में—चाहे भक्ति या शृंगार परखा जाय वह अनुभूति की चरम अवस्था पर स्थित है। आलम्बन उद्दीपन, आश्रय, अनुभाव आदि सब उस अनुभूति का आकार देने के उपकरण है। नित्य परिवर्तनशील सौन्दर्य की अनुभूति-दशा में संयोग और वियोग दोनों का आस्वादन गोपियाँ करती रहती हैं। क्षण भर को कृष्ण का रूप नयनों में और मन में समाया, उसकी मूर्च्छना भरी अनुभूति हृदय ने की तो संयोग सुख और क्षण भर वह बदल गया तो वियोग दुख। इस स्थिति में आश्रय की विवशता तड़प दर्शन रूप सुधा पान की आकांक्षा और आकुलता है उस कल्पना और अनुभूति करने पर भी शब्दों में आबद्ध है।

संयोग के पश्चात वियोग पक्ष का भी विचार कर लेना समीचीन है। माधुर्य भाव में विरह की कल्पना प्रायः सभी काव्य प्रवृत्तियों में की गई है, जिसे कबीर ने भी प्रेम विरह कहा है।[1] विरह के प्रेम और ज्ञान दो पक्षों का संकेत केवल कबीर में है। कबीर में विरह के जिस स्वरूप का ज्ञान विरह कहा गया है वैसा सूफी काव्य में भी पाया जाता है। इस प्रकार विरह के दो पक्ष—ज्ञान और भाव हुए।

ज्ञान विरह एक जानकारी मात्र है तथा भाव विरह आश्रय की अनुभूति। आश्रय की विरहावस्था देख पढ़ या सुन कर सामाजिक में भी वही अनुभूति होती है। आश्रय के भावलीनता से सामाजिक का तादात्म्य होता है। यही विरह रस दशा को पहुँचता है ज्ञान विरह रस दशा को नहीं पहुँचता। भाव विरह में रस के साधारणीकरण की सामर्थ्य है ज्ञान विरह में नहीं। ज्ञान विरह

१ कबीर ग्रन्थावली—श्यामसुन्दर दास—पृ० ७

साधक में विरह जगाने में उद्दीपन का काम करता है । इसीलिए ज्ञान विरह अनुमानित या आरोपित है और भाव विरह स्वानुभूत ।

ज्ञान विरह की अभिव्यक्ति सूरदास के विरह चित्रण में मिलती है । कृष्ण का विरह सम्पूर्ण गोकुल अनुभव कर रहा है ।[1] विरह निमग्नता ही प्रेम की सघनता अनन्यता, उत्सर्ग, वासना के तिरोभाव, आत्मा के ज्योति जागरण और सर्वस्व की कसौटी है । मिलन सुख काम है और विरह साधना प्रेम । वास्तविक अर्थ में रति चित् मुख या ब्रह्मोन्मुख विरहलीनता ही में होती है ।

निर्गुण मार्गी कबीर दादू और सूफी कवि जायसी आदि ने जिस प्रकार विरह को विविध प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त किया है उसी प्रकार कृष्ण भक्त कवियों ने किया है ।

रामकाव्य में माधुर्य भाव

सीता परब्रह्म भगवान राम की परा आह्लादिनी शक्ति है । श्री भू, लीला आदि की वह अधिष्ठात्री है । इच्छा, ज्ञान, कर्म तीनों शक्तियों से समन्वित, मूल प्रकृति रूप में वह परम पुरुष राम की भोग्या है । परब्रह्म की रमणेच्छा से उसका आविर्भाव हुआ है । राम और सीता एक परमतत्व के दो रूप हैं । वह परमतत्व पति पत्नी के शरीर धारण कर आत्म विलास करता है । सीता ने राम को सन्तुष्ट करने के लिए अपने अंगों से ३३ सखियाँ उत्पन्न की हैं । रासलीला में राम को प्रसन्न करने के लिए अनन्त सखियाँ विहार करती हैं ।[2]

राम नाम स्वयं ब्रह्मवाचक है । तत्वज्ञानी योगी नित्य राम में रमते हैं । सब भूतों में रमन के कारण परब्रह्म का मुख्य नाम राम है । मूल रूप में सभी कुछ राम में निहित है । वह प्रणव का मूल है ।

राम के दो रूप हैं—एक मर्यादा पुरुषोत्तम और दूसरा लीला पुरुषोत्तम । अयोध्या में वह विश्व सचालन की सामर्थ्य से सम्पन्न ऐश्वर्यगुणों का प्रकाश करते हैं–यह उनका मर्यादा पुरुषोत्तम रूप है । साकेत में वह नित्य सौन्दर्य सुषमा रूप यौवन शृंगार माधुर्य रूप से विहार और क्रीडायें करते हैं । यह उनका लीला पुरुषोत्तम माधुर्य रूप आन्तरिक है–यही राम का आत्मरूप या स्वयरूप है ।[3] राम पुरुष और सीता प्रकृति है । साकेत की माधुर्य लीला प्रकृति

---

१ भ्रमरगीतसार–पद–२७८ ३४२ ३२५

२ रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय–डा० भगवती प्रसाद सिंह–पृ० २८९–९०

३ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय–भगवती प्रसाद सिंह–पृ० २७७

पुरुष की नित्य लीला है ।[1] दोनो ही इसी प्रकार अभिन्न हैं जैसे सूर्य और उसकी प्रभा ।[2]

राम की सहस्रों परिणीताओं के अतिरिक्त रास में भाग लेने वाली, युगल सरकार की विलास केलियों का प्रबन्ध करने वाली, उनकी नित्य सेवा करने वाली और इन विहार, विलास, काम क्रीडाओं की झाकी कर 'तत्सुख' और स्वसुख की अनुभूति करनेवाली अनेक सखियों की संख्या भी रसिक साहित्य में विस्तार से दी गई है ।[3]

रामभक्ति के अन्तर्गत मधुरभाव की पूर्ण अभिव्यक्ति राम और सीता की प्रेमलीलाओं के माध्यम से की गई है ।

सीता-राम माधुर्यलीला

रामभक्ति में माधुर्य भाव के तीन रूप मिलते हैं—

(क) युगल विलास, जिसमें सीताराम के शृंगार केलि विलास[4] अष्टयाम, नृत्यगान, फाग, रास आदि[5] का चित्रण रहता है । इसके दर्शन से प्राप्त सुखानुभूति ही तत्सुख भावना कहलाता है । भक्त सीता की अनुभूति को अपनी अनुभूति मानता है । वह सखी रूप में या द्रष्टा रूप में इस लीला सुख को प्राप्त करता है ।

(ख) बहुरमणी विलास, इसमें राम दक्षिण नायक रूप में चित्रित हैं । इस विलास में राम के दो रूप मिलते हैं—एक तो असंख्य राजा मुनियों गंधर्वों की पुत्रियों और जनकवंशी कन्याओं के साथ विहार, जो राम की परिणीता

---

१ याते सीता राम तत्व यक रूप दुइ ।
मूल प्रकृति है अन्य तन कर नहिं सकत हुई ॥
—रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय, पृ० २९७ (उद्धृत)

२ सीता राम बिना नव राम सीता बिना नहि ।
श्रीसीतारामयोरेम सम्बन्ध शाश्वतो मत ॥
—वही उद्धृत, पृ० २९७

३ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—पृ० २९१–९३

४ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—भगवती प्रसाद सिंह पृ० ५२६ पर (सीतारामशरण शुभलीला, पृ० २७) उद्धृत ।

५ ज्ञाना अली, सिय केलि पदावली रा० भ० उ०, पृ० २२०–वही, पृ० २२७ पर उद्धृत ।

पत्नियाँ हैं¹ दूसरे उन रमणियों के साथ जिनसे राम का विवाह नहीं हुआ है,
या जिनकी निश्चित स्थिति प्रेमिका रूप में निरूपित नहीं। यह राम रमणी
सम्बन्ध वैसा ही है जैसा रीतिकालीन गोपी-कृष्ण। यह परकीय प्रेम कहा
जायगा। निज को परिणीता या परकीया दोनों रूप में पहुँचाकर रसिक भक्त
इस मुख भावना की अनुभूति करता है।

(ग) एकान्तिक विलास² जिसमें भक्त राम से सीधा प्रेमिका या पत्नी का
सम्बन्ध मानकर मिलन विरह की अनुभूति करता है। यह अनुभूति की स्वसुख
भावना के अन्तर्गत है। यह प्रेम भावना सूफियों के ढंग की है।

राम रसिक साहित्य में विरह-पक्ष का चित्रण नहीं मिलता। उनकी मान्यता
है कि सीता राम नित्य मिलन क्रीडालीन हैं।

रसिक भक्तों द्वारा चित्रित सीता राम के लीला विलास का जो स्वरूप
प्रस्तुत किया गया है वह सारा का सारा भाव कृष्ण काव्य का अनुकरण है।

जायसी का प्रेम तत्व

प्रेमाश्रयी साधक हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत 'सूफी संत' के नाम से प्रसिद्ध
है। ये सूफी उजड़ी हुई बस्तियों को बसाते हुए जन जन के हृदय में प्रेम का
बीज बोते हुए अपने उस प्रिय प्रभु को प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं, जो
नित्य सौन्दर्यवान एवं आनन्द का सागर है। सूफियों की दृष्टि में प्रेम ही इस
प्रिय को प्राप्त कराने का एकमात्र अवलम्ब है। इनके द्वारा विरचित साहित्य
प्रेम गाथा नाम से अभिहित किया गया है।

प्रेमगाथाओं का बीजभाव प्रेम है। इस प्रेम को दूसरे शब्दों में रति
कहा जा सकता है। रति का प्रेरक है सौन्दर्य। सौन्दर्य ही आकर्षण का
कारण है। सौन्दर्य ही पान उपभोग की लालसा जगाता है। यही लालसा
वासना का सहयोग पाकर उत्कट कामना, संकल्प और रति या प्रेम का रूप

---

१ रामभक्ति में रसिक सम्प्रदाय—भगवती प्रसाद सिंह पृ० ५२८ पर उद्धृत—
(अ) कृपानिवास लगन पचीसी, रा० भ०, उ० प० ११५
(ब) श्यामसखे—पदावली, वही, पृ० २६९ ७०
(स) रामसखे—जानकी नौरत्न माणिक्य वही पृ० ३२३
२ (अ) रामसखे, पदावली, रा० भ० उ० पृ० ३२५
(ब) श्याम सखे—पदावली वही, पृ० ३६९
(स) वही, पृ० ३७३
(द) युगलानन्यशरण, वही, पृ० २७७

धारण कर लेती है।

हिंदी प्रेमगाथाओं में आलम्बन को प्रेयसी की भाव धरती से उठाकर पत्नी के गरिमा सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया गया है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेयसी रूप में मिलनोत्कंठा, प्रेम की तीव्रता काम कातरता विरह की तीव्रता को सदा अधिक अवकाश रहता है, पर चिर तन मिलन, अटूट सायुज्य, निरंतर एकात्मकता, अहर्निश तल्लीनता, अनन्त सम्भोग सुख सुलभता पत्नी में ही रहती है।

आत्मा परमात्मा के प्रतीक रूप में भी आलम्बन (परमात्मा) पत्नी रूप में ही सूफी भक्ति के अधिक अनुकूल है। फारसी सूफी साहित्य में अमरद (किशोर) को भी आलम्बन माना गया है।[1]

सौन्दर्य

सौन्दर्य चित्रण दो तरह से किया जाता है—परम्परा नख शिख वर्णन और प्रसंगानुसार भाव को अधिक रसात्मक और उत्कर्षपूर्ण बनाने के लिए रूप चेष्टा चित्रण।

सूफी साहित्य में मांग[2] उरोज[3] भवों और कटाक्ष[4] का सौन्दर्य चित्रण किया गया है। यह नख शिख वर्णन परम्परागत है। कभी कभी ये प्रभाव साम्य भावोत्कर्ष में सहायक होने की अपेक्षा विरोधी हो जाते हैं।[5] सूफी साहित्य में वर्णित सौन्दर्य निरूपण से रतिभाव के उद्दीपन में न तो सहायता ही मिलती है और न नायिका के सम्पूर्ण या सम्मिलित सौन्दर्य का मुग्धकारी बिम्ब ही सामने आता है। पाठक उपमानों की लम्बी भीड़ में भटक जाता है, सौन्दर्यानुभूति का अवसर ही उसे नहीं मिलता।

सूफी नायक प्रेमपथ का बेधड़क और आस्थावान पथिक है। संसार की कोई विघ्नबाधा उसे नहीं रोक सकती। प्रेम का आधार रति का आलम्बन,

१ तसव्वुफ अथवा सूफीमत पृ० १०३

२ जायसी ग्रंथावली रामचन्द्र शुक्ल पृ० ४१

३ वही पृ० ४६

४ हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह (चित्रावली) पृ० ११४

५ जायसी ग्रंथावली पृ० ४७

६ जायसी द्वारा चित्रित पदमावती का अधर—

'राता जगत देखि रंगराती। रुहिर भरे आछहिं बिहसाती॥

वही, पृ० ४४

भावुकता और कल्पना का विश्राम, अभिलाषा का आकर्षण केन्द्र और अक्षुण्ण सौन्दर्य सीमा प्रेयसी ही समस्त प्रयासों की पहुँच है समस्त मधुप का लक्ष्य है। उसकी एक झलक भर के लिए प्रेमी साधक कैसा आकुल रहता है—

"दरसन देखे बार नहि, रोम रोम मय नैन।
नींद न आवत निसि कहू, वासर परत न चैन।।[1]

यह प्रेम इस जन्म का नहीं अनादि का है। साधक अपने साध्य को देखते ही पहचान लेता है और प्रेम विह्वल हो जाता है। प्रेम की सत्यता यही है।

जायसी की साधना ने प्रेम की शक्ति से सांसारिक पति पत्नी के संयोग परमात्मा आत्मा के मधुर मिलन की झांकी का प्रत्यक्ष करते हुए प्रेममार्गियों को एक नयी दिशा भी दी और प्रेम के अलौकिक आनन्द का प्रतिपादन भी किया। सांसारिकता से प्रेमी का सम्बन्ध न होने के कारण इन प्रेमियों ने संसार को उस परम प्रभु के प्रेम का प्रसार ही मान लिया और भगवत प्रेम में सराबोर हो गये। इस प्रेम के कारण अम्ल, मधुर, अरूप रूपवान ताम्रवर्ण अग्निप्रकाश दुःख आनन्द सूली सिंहासन, कांटा फूल और मृत्यु जीवन बन जाता है। कितना सामर्थ्यवान है यह प्रेम जिसने जड़ को चेतन और शुष्क को सरस बनाकर रस सागर में डुबो दिया। गोपियां इसी प्रेम में मतवाली हो गई थी और राधा ने इसी प्रेम से श्यामसुन्दर के हृदय को जीत कर उनका नित्य संयोग प्राप्त कर लिया था।

जायसी का ईश्वरोन्मुख प्रेम पदमावत में अपने सम्पूर्ण छवि के साथ उपस्थित हुआ है। उसमें प्रियतम के प्रेम में वशीभूत उनकी आत्मा प्रारम्भ से ही अपने प्यार के वियोग में तड़पती हुई प्रतीत होती है। इस प्रकार जायसी की उपासना माधुर्य भाव से प्रेमी और प्रिय के भाव से है।[2] जिस प्रेमगाथा के सहारे जायसी ने अपने प्रेम सिद्धान्तों का प्रसार किया उसका एकमात्र कारण था अपनी साधना मधुर रूप में उपस्थित करना। यह प्रेमगाथा दिखावा है किन्तु इसके अन्तर में परमसयोगी प्रभु के संयोग की अपार राशि छिपी है। जिसके हृदय में उसे पाने की टीस उत्पन्न हो जाय वही सच्चा साधक है और उसे प्राप्त भी कर सकता है। पद्मावत काव्य का रत्नसेन भी उस माधुर्य को प्राप्त करने के लिए संसार के समस्त बन्धनों को तोड़कर योगी बन जाता

१ हिन्दी प्रेमगाथा काव्य संग्रह (इंद्रावती) पृ० २५६
२ जायसी ग्रंथावली भूमिका भाग पृ० १५६

है और प्रेम पथ की विघ्न बाधाओं की चिन्ता न करते हुए प्रिय मिलन के हेतु चल पड़ता है। ससार मे इस समय सिवाय प्रियतम के कुछ नहीं दिखाई देता--

'तीनि लोक चौदह खड सब पर मोहि सूझ।
पम छाँडि नहि लोन किछु जो देखा मन बूझि॥'

रत्नसेन रूपी भक्त ने बडे विश्वास के साथ अपने को प्रेम के समुद्र म डाला था और कहा था--

"प्रेम समुद्र जो अति अवगाहा। जहा न वार पार न थाहा।
जो एहि खीर समुद्र मह परे। जीव गवाइ हस होइ तर।।"[२]

आत्मा युग युग से जन्म जन्मान्तर स परमात्मा के विरह म छटपटा रही है। परमात्मा भी अपने अश आत्मा के लिए आकुल है। जायसी के पास उसका समाधान यदि कोई है तो वह रत्नसेन के भोग का अलक्ष्य प्रभाव।

प्रेम चार प्रकार का माना गया है--[३]

(१) विवाह के बाद जीवन सघर्ष म जिसका उत्कर्ष दिखाया जाता है।

(२) विवाह से पूर्व, जो जीवन क्षेत्र म कहीं भेंट होने से उदित होता है और जिसका परिणाम विवाह होता है।

(३) राजा प्रसाद वाटिका जल विहार आदि म जो रङ्ग रहस्य के रूप म प्रकट होता है।

(४) गुण श्रवण चित्र दर्शन स्वप्न दर्शन आदि के द्वारा जिसका उदय होता है।

सूफियो का प्रेम दूसरे और चौथे प्रकार का समन्वित रूप है।

प्रेम की उदयावस्था पूर्वराग है। पूर्वराग तीन रूपों--चित्रदर्शन गुण श्रवण और स्वप्न दर्शन--मे उदित होते दिखलाया गया है। स्वप्न दर्शन द्वारा उत्पन्न पूर्वराग कम स्वाभाविक है। पूर्वराग के दो पक्ष हैं--एक मिलन सुख की तन्मयता, प्रेम की परिपक्वता चिर साहचय की स्वीकृति, समर्पण आदि और दूसरा, विरह।

आलम्बन के मुग्धकारी सौन्दर्य रस का एक घूट पीते ही आश्रय सुध बुध खो बठता है। भावलीनता और विस्मरण की अतल गहराइयो मे निमग्न

१ जायसी ग्रन्थावली पृ० ३९
२ वही पृ० ६०
३ वही, पृ० २७

हो जाता है । पद्मावती के रूपगुण श्रवण करने पर भी रत्नसेन की यही अवस्था होती है—

"सुनतेहि राजा गा मुरझाई । जानौ लहरि सुरुज कै आई ।
खिनहि उसास बूडि जिउ जाई । खिनहि उठ निसरै बौराई ।
खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता । खिनहि चेत खिन होइ अचेता ॥"[1]

नायक का प्रेम विह्वल दशा में हो जाना भगवत्प्रेम का ही रूप उपस्थित करता है । इससे एक तो ब्रह्म के प्रकृति व्यापक सौंदर्य की ओर संकेत मिलता है दूसरे साधक के हृदय के चिरंतन प्रेम संस्कार की ओर ।

पूर्वराग के परिपक्व हो जाने के पश्चात् प्रेम का प्रयत्न या साधना पक्ष आता है । साधना पक्ष के दो भाग—बाहरी संघर्ष और विरह है । नायक राज पाट सुख ऐश्वर्य छोड़कर जोगी बनकर निकल पड़ते हैं—

चला भुगुति माँगै कहँ साधि कया तप जोग ।
सिद्ध होइ पद्मावति, जेहि कर हिये वियोग ॥"[2]

साधक के समक्ष अनेक कठिनाइयों का प्रादुर्भाव होता है । लेकिन साधक उन्हें ठुकरा कर अपनी प्रेयसी के प्रति अनन्य प्रेम और निष्ठा का परिचय देता है । इसे ही साधना का संघर्ष पक्ष कहते हैं ।

विरह साधना का प्रतीक है । विरह साधना दो प्रकार की होती है—ज्ञान विरह और प्रेम विरह । गुरू के द्वारा साधक को परम प्रिय परमात्मा का बोध कराना और उसके हृदय में विरह की चिंगारी जलाना ही ज्ञान विरह जागृत करना है ।[3] विरह चिंगारी जब सुलग कर कभी न बुझने वाली आग बन जाती है तो साधक विश्व के कण कण को उसी प्रियतम की विरह ज्वाला में सुलगते हुए पाता है । साधनावस्था का भावपक्ष विरह है । विरह ही सूफी काव्य का प्राण तत्व है—

मुहमद चिनगी पेम कै, सुनि महि गगन डेराइ ।
धनि विरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाइ ॥[4]

वियोग साधना ही प्रेम परीक्षा की सफलता की सनद है । यह कितना

---

१ जायसी ग्रंथावली पृ० ४९
२ वही पृ० ५३
३ वही पृ० ५१
४ जायसी ग्रंथावली पृ० ६३ दोहा ६
५ वही पृ० ८८

"अनचिह्ह पिउ कापो मन माहा । का मैं कहब गहय जो वाहा।"[1]

पति पत्नी का मिलन आध्यात्मिक मिलन है। प्रेयसी का अधरामृतपान जीवन को अमर कर देता है—

'अधर घट सो अमिरित पीया । जेहि के पियत अमर भा हीया ॥[2]

प्रिय और प्रयसी गले मिलते ही द्वैत का दुख भूल जाते है। सोने और सोहागे की तरह दोनो मिलकर एकाकार हो जाते हैं। दोनों के बीच का अंतर मिट जाता है—

कहि सतभाव भई कठ लागू । जन कचन औ मिला सोहागू ॥[3]

इस अखड मिलन को ही जिसमे साधक और साध्य (आत्मा परमात्मा) एकाकार हो जाते हैं फना कहा गया है।[4]

जायसी लौकिक सौदर्य से परम सौदर्य की ओर अग्रसर होते जाते हैं। क्या सयोग क्या वियोग दोनो मे कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है। जगत के सारे व्यापार जिसकी छाया से प्रतीत होने लगते हैं।[5]

तात्पर्य यह कि जायसी के प्रेम निरूपण मे वे सारी विशेषताएँ लक्षित होती है जो मधुरभाव के साधकों मे पाई जाती हैं। अतर केवल यह है कि जायसी सूफी साधक थे और सूफी साधक भौतिक प्रेम की उपेक्षा नहीं कर पाते। उनकी दृष्टि मे भौतिक प्रेम केवल प्रतीक ही नही सत्य भी है जबकि मधुरभाव का साधक भौतिक रति को जड विषयक रति मानता है। वह भौतिक *जीवन के प्रणय प्रसगों को आध्यात्मिक प्रेम लीला की अभिव्यक्ति का साधन* मानता है। किन्तु जहाँ तक मधुर भाव की साधना के अतिम लक्ष्य का प्रश्न है जायसी की प्रेम साधना मे भी उसे ही महत्व दिया गया है।

---

१ जायसी ग्रन्थावली प० १३२

२ चित्रावली, प० २०४

३ जायसी ग्रन्थावली प० १३९

४ हिन्दी सूफी कवि और काव्य सरला शुक्ल, प० ६९८

५ जायसी ग्रन्थावली पृ० ५५ (भूमिका भाग)

उपसंहार

पिछले अध्यायो मे जायसी के प्रेम निरूपण का विस्तत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। जायसी भक्तिकालीन प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा के सवश्रेष्ठ कवि हैं। उनके काव्य--पद्मावत, चित्ररेखा--का बीज भाव प्रेम है। उनकी अय कृतिया म भी 'प्रेम का महत्व प्रतिपादित किया गया है। वस्तुत सूफी साधना के मूल म 'प्रेम ही सवप्रधान तत्व है। आरम्भ से लेकर सूफी साधना के चरम विकास तक जितने सूफी साधक हुए हैं प्राय सभी ने प्रेम की दि यता, यापकता और अलौकिकता का प्रतिपादन किया है।

जायसी ने 'प्रेम को केद्र मे रखकर कथा प्रतीक के माध्यम से सूफी साधना के गूढ रहस्य को प्रकट किया है। मनुष्य के जीवन की साथकता प्रदान करने वाला न जप है, न तप, न ज्ञान, न ध्यान, न वराग्य न पूजा वह प्रेम के बल पर ही दि यता प्राप्त करता है। जप तप योग, ज्ञान तो प्रेम निष्ठा के लिए मनोभूमि प्रस्तुत करते हैं। प्रेम ही मनुष्य को ईश्वर के निकट ले जाता है। प्रेम ही ईश्वर है।

सम्पूण सष्टि प्रेममयी है। इसकी रचना प्रेम के लिए-प्रेम को स्थापित करने के लिए की गयी है। यह स्वय स्रष्टा के प्रेम म मग्न अनवरत उसी की खोज मे गतिमयी है। सष्टि का कण कण अनात प्रिय का खोज रहा है। गति के मूल म प्रेम का आकषण है। प्रेम विश्व यापी है। प्रेम ही चेतना का सस्कार करता है। प्रेम ही सत्य है।

सच्ची अद्व तता प्रेममूलक होती है। ज्ञानात्मक एकात्मभाव से अधिक स्थायी भावात्मक एकात्मभाव है। सूफी साधना इसीलिए प्रेम भाव के द्वारा पूण अद्व तता की स्थिति तक पहुँचती है। जायसी की प्रेम साधना का यही लक्ष्य है--प्रिय के साथ पूण एकात्म।

मधुर साधना का केद्र प्रेम है। प्रेम से बडी कोई साधना नही है। प्रेम ईश्वर और मनुष्य को एक सूत्र म पिरोने वाला तत्व है। प्रम ध्रुव के

समान ऊँचा, श्रेष्ठ और प्रकाशमान है। प्रेम की ज्वाला म जल कर जो निष्कलुष हो गय हैं वे ही सच्चे साधक हैं। उन्हीं का जीवन सार्थक है। प्रेम निरूपण करके जायसी यशस्वी हुए हैं। प्रेम ने ही जायसी का अमर बनाया है। प्रेम करना है तो विरह के मम को समझना होगा। सच्चा प्रेम विरह की तीव्र अनुभूति से ज्योतित होकर सारे ससार को प्रकाशित करता है। जायसी का प्रेम ऐसा ही दि य, अमर, अलौकिक विरह गर्भित प्रम है।

सहायक ग्रन्थ सूची

(क) सस्कृत ग्र थ

१ अभिज्ञान शाकु तलम	स० कपिल्देव द्विवेदी	प्रथमावत्ति
२ ऋग्वेद	पना	१९३३ ई०
३ ततिरीयोपनिषद	गीतप्रेस गोरखपुर	२०२६ ई०
४ भक्तिरसामतसि धु	रूपगोस्वामी स० डा० नगे द्र	१९६३ ई०
५ महाभारत	गीताप्रेस, गोरखपुर	२०२५ वि०
६ विक्रमोर्वशीयम्	एच० जी० वेलकर	१९४८ ई०
७ वहदारण्यकोपनिषद	गीताप्रेस, गोरखपुर	२०२५ वि०
८ श्रीमदवाल्मीकीय रामायणम	पडित पुस्तकालय काशी	१९५१ इ०
९ श्रीमदभगवदगीता	टीकाकार—बाबूराव विष्णु पराडकर	१९७१ वि०
१० श्रीमदभागवत	मोतीलाल बनारसीदास पटना	१९६४ ई०
११ हरिवशपुराण	पण्डित पुस्तकालय, काशी	प्रथमावत्ति

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

१२ अनुराग बांसुरी (नूरमुहम्मद)	स० रामचन्द्र शुक्ल चन्द्रबली पाण्डेय	२००२ वि०
१३ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय	दीनदयाल गुप्त	२००४ वि०
१४ इन्द्रावती (नूरमुहम्मद)	स० श्यामसुन्दरदास	१९०६ ई०
१५ इस्लाम के सूफी साधक	अनु० नमदेश्वर चतुर्वेदी	प्रथम सस्करण
१६ ईरान के सूफी कवि	बाँके विहारी तथा कन्हैयालाल	
१७ कबीर ग्रन्थावली	श्यामसुन्दरदास	२००८ वि०
१८ गीतावली (तुलसी ग्रन्थावली)	स० रामचन्द्र शुक्ल	२०२५ वि०

समान ऊँचा, श्रेष्ठ और प्रकाशमान है। प्रेम की ज्वाला मे जल कर जो निष्कलुष हो गये है वे ही सच्चे साधक हैं। उन्ही का जीवन सार्थक है। प्रेम निरूपण करके जायसी यशस्वी हुए हैं। प्रेम ने ही जायसी को अमर बनाया है। प्रेम करना है तो विरह के मर्म को समझना होगा। सच्चा प्रेम विरह की तीव्र अनुभूति से ज्योतित होकर सारे ससार को प्रकाशित करता है। जायसी का प्रेम ऐसा ही दिव्य, अमर, अलौकिक विरह गर्भित प्रेम है।

सहायक ग्रन्थ सूची

(क) संस्कृत ग्रन्थ

१ अभिज्ञान शाकुन्तलम — सं० कपिलदेव द्विवेदी — प्रथमावृत्ति

२ ऋग्वेद — पूना — १९३३ ई०

३ तैत्तिरीयोपनिषद् — गीताप्रेस, गोरखपुर — २०२६ ई०

४ भक्तिरसामृतसिंधु — रूपगोस्वामी, सं० डॉ० नगेन्द्र — १९६३ ई०

५ महाभारत — गीताप्रेस, गोरखपुर — २०२५ वि०

६ विक्रमोर्वशीयम् — एच० जी० वेलकर — १९४८ ई०

७ वृहदारण्यकोपनिषद — गीताप्रेस गोरखपुर — २०२५ वि०

८ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणम् — पंडित पुस्तकालय काशी — १९५१ ई०

९ श्रीमदभगवद्गीता — टीकाकार–बाबूराव विष्णु पराडकर — १९७१ वि०

१० श्रीमदभागवत — मोतीलाल बनारसीदास, पटना — १९६४ ई०

११ हरिवंशपुराण — पण्डित पुस्तकालय काशी — प्रथमावृत्ति

(ख) हिन्दी ग्रन्थ

१२ अनुराग बाँसुरी (नूरमुहम्मद) — सं० रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रबली पाण्डेय — २००२ वि०

१३ अष्टछाप और वल्लभसम्प्रदाय — दीनदयाल गुप्त — २००४ वि०

१४ इन्द्रावती (नूरमुहम्मद) — सं० श्यामसुन्दरदास — १९०६ ई०

१५ इस्लाम के सूफी साधक — अनु० नर्मदेश्वर चतुर्वेदी — प्रथम संस्करण

१६ ईरान के सूफी कवि — बाँके विहारी तथा कन्हैयालाल

१७ कबीर ग्रन्थावली — श्यामसुन्दरदास — २००८ वि०

१८ गीतावली (तुलसी ग्रन्थावली) — सं० रामचन्द्र शुक्ल — २०२५ वि०

१९	गोस्वामी तुलसीदास	रामचन्द्र शुक्ल	१९४१ ई०
२०	चित्रावली (उसमान)	सं० जगमोहन शर्मा	१९१२ ई०
२१	चित्ररेखा (जायसी)	सं० शिवसहाय पाठक	१९५९ ई०
२२	जायसी	रामपूजन तिवारी	१९६७ ई०
२३	जायसी ग्रन्थावली	सं० रामचन्द्र शुक्ल	२०१३ वि०
२४	जायसी का पद्मावत शास्त्रीय भाष्य	गोविन्द त्रिगुणायत	प्रथम संस्करण
२५	जायसी के परवर्ती सूफी कवि और काव्य	सरला शुक्ल	प्रथम संस्करण
२६	तसव्वुफ अथवा सूफीमत	चन्द्रबली पाण्डेय	१९४८ ई०
२७	दोहावली	सं० लाला भगवानदीन	१९८३ वि०
२८	नन्ददास ग्रन्थावली	सं० ब्रजरत्नदास	२०१४ वि०
२९	नल दमन (सूरदास लखनवी)	सं० वासुदेव शरण अग्रवाल	१९६१ ई०
३०	पद्मावत	सं० वासुदेव शरण अग्रवाल	२०१२ वि०
३१	पद्मावत का काव्य सौन्दर्य	शिवसहाय पाठक	१९५६ ई०
३२	प्रामाणिक हिन्दी कोश	रामचन्द्र वर्मा	२००८ वि०
३३	भ्रमर गीत सार	सं० रामचन्द्र शुक्ल	२०१८ वि०
३४	भक्ति काव्य में मधुर भाव का स्वरूप	जयनाथ 'नलिन'	१९६६ ई०
३५	मध्यकालीन धर्म साधना	हजारी प्रसाद द्विवेदी	१९६२ ई०
३६	मध्यकालीन प्रेम साधना	परशुराम चतुर्वेदी	१९६२ ई०
३७	मध्ययुगीन काव्य साधना	रामचन्द्र तिवारी	प्रथम संस्करण
३८	मध्ययुगीन प्रेमाख्यान	श्याम मनोहर पाण्डेय	,,
३९	मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य	शिवसहाय पाठक	१९६४ ई०
४०	मधुमालती (मंझन)	सं० माता प्रसाद गुप्त	१९६१ ई०
४१	मध्यकालीन हिन्दी और पंजाबी प्रेमाख्यान	ओमप्रकाश	१९७१ ई०
४२	माधवानल कामकंदला प्रबन्ध	सं० एम० आर० मजूमदार	१९४२ ई०
४३	रस रतन (पुहकर)	शिवप्रसाद सिंह	२०२० वि०
४४	रामचरित मानस	गीताप्रेस, गोरखपुर	

४५ रामचरित मानस	काशिराज सस्करण	१९६२
४६ राधावल्लभ सम्प्रदाय	विजयेन्द्र स्नातक	२०१४ वि०
४७ रामभक्ति म रसिक सम्प्रदाय	भगवती प्रसाद सिंह	२०१८ वि०
४८ रामभक्ति म मधुर उपासना	भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र	२०१४ वि०
४९ विद्यापति पदावली	मित्र मजूमदार	१९५१ वि०
५० स तवानी सग्रह (पहला भाग)	वेलवडियर प्रेस, इलाहाबाद	१९५० ई०
५१ सूरसागर (प्रथम भाग)	नागरी प्रचारिण सभा	२००५ वि०
५२ सूरसागर (द्वितीय भाग)	,, , ,,	२००७ वि०
५३ सूर और उनका साहित्य	हरवशलाल शर्मा	२०१५ वि०
५४ सूर साहित्य	हजारी प्रसाद द्विवेदी	१९५६ ई०
५५ सूर सौरभ	मुशीराम शर्मा	२०१३ वि०
५६ सूफीमत साधना और साहित्य	राजपूजन तिवारी	२०१३ वि०
५७ सूफीमत और हि दी साहित्य	विमल कुमार जन	१९५५ ई०
५८ सूफीकाव्य-सग्रह	परशुराम चतुर्वेदी	२०१३ वि०
५९ हम जवाहर (कासिमशाह)	राजकुमार प्रेस लखनऊ	१९५२ ई०
६० हि दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	रामकुमार वर्मा	१९५४ ई०
६१ हिन्दी साहित्य म विरह प्रसग	हनुमानदास चकोर	प्रथम सस्करण
६२ हिन्दी प्रमगाथा काव्य सग्रह	गणेशप्रसाद द्विवदी	१९५३ ई०
६३ हिन्दी प्रमाख्यानक काव्य	कमल कुलश्रेष्ठ	१९६२ ई०
६४ हिन्दी कृष्णकाव्य म माधुर्योपासना	कमल कुलश्रेष्ठ	१९५३ ई०
६५ हिन्दी सूफी कवि और काव्य	सरला शुक्ल	२०१३ वि०

(ग) उर्दू, अरबी ग्रन्थ

६९	दीवान ख्वाजा गरीब नवाज	स० मुस्लिम अहमद निजामी	जामा मस्जिद दिल्ली
७०	दीवाने गौसुल आजम	कुतुबखाना नजीरिन	उर्दू बाजार दिल्ली
७१	यूसुफ जुलेखा	स० गोपालचन्द सिन्हा	प्रथम संस्करण
७२	लैला मजनू (निजामी)	नवल किशोर प्रेस	१८८० ई०
७३	हकायके हिन्दी (मीर अब्दुल वाहिद बिलग्रामी)	अनु० सैयद अतहर अब्बास रिजवी	१९५७ ई०